

- वर्षा जल के साथ बहकर यह क्षरित मिट्टी नदियों और जलाशयों में पहुँचती है।
- नदियों आदि में इस मिट्टी के जमा होने से उनकी तलहटी उथली होने लगती है।
- इन उथली नदियों में जब जल के बहाव की वृद्धि होती है तो बाढ़ का संकट बढ़ जाता है।
- बाढ़ के साथ प्रतिवर्ष लगभग छः करोड़ टन मिट्टी बह कर समुद्र में चली जाती है, जिससे खेती योग्य भूमि बंजर बन जाती है। इसके साथ-ही-साथ बाढ़ जन-जीवन को भी अपार क्षति पहुँचाती है।
- पर्वतीय क्षेत्रों में निर्वनीकरण के कारण पहाड़ों के ढलान अस्थिर हो जाते हैं, जिससे वर्षा जल मिट्टी की उर्वर सतह को बहाकर ले जाता है, साथ ही भूस्खलन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं, जिससे बड़े पैमाने पर जन जीवन को क्षति पहुँचती है।
- जिन क्षेत्रों में वनों का अभाव होता है, वहाँ वर्षा भी कम होती है, चूँकि वन वाष्पीकरण द्वारा बादलों को आकृष्ट करके वर्षा कराने में सहयोग देते हैं अतः निर्वनीकरण के कारण अनावृष्टि और सूखे की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
- निर्वनीकरण के कारण अनेक प्रकार की वनस्पतियों, जन्तुओं और सूक्ष्मजीवों की कई प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा भी बढ़ जाता है।
- वनों की समाप्ति के कारण वे आदिवासी और वनवासी जिनका जीवन तथा संस्कृति वन पर ही निर्भर रहती है, बुरी तरह प्रभावित होते हैं।
- वनों के कट जाने के कारण इमारती लकड़ी का अभाव उत्पन्न हो गया है।
- पशुओं के लिए चारे, ईंधन एवं रेशों को प्राप्त करने में दिनों दिन कठिनाई बढ़ती जा रही है।
- इन सबके अतिरिक्त निर्वनीकरण से पर्यावरण प्रदूषण के रूप में पर्यावरण की भारी क्षति हो रही है।
- वृक्षों के अभाव में प्राणियों द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाइ ऑक्साइड अवशोषित नहीं हो पाती।
- यह कार्बन डाई ऑक्साइड पर्यावरण में विद्यमान रहकर प्रदूषण गैस की मात्रा बढ़ाती है जिससे हरित गृह प्रभाव

(Green house effect) उत्पन्न होता है, साथ-ही-साथ धरती के तापमान में वृद्धि (Global warming) भी करती है।

- अतः निर्वनीकरण कारण पर्यावरण पर अनेक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव पड़ते हैं जो अत्यन्त व्यापक और दूरगामी हैं।

वन संरक्षण एवं प्रबन्धन

- कृषि, मकान, उद्योग एवं नगरों को बसाने के लिए धीरे-धीरे वनों की कटाई शुरू हुई और आज स्थिति यह है कि विश्व भर में 'खाली वन क्षेत्र' बढ़ते जा रहे हैं।
- हमें वनों के संरक्षण हेतु त्वरित एवं निश्चित कदम उठाने होंगे ताकि प्रकृति का जो नुकसान हमने किया है उसकी क्षतिपूर्ति कर सकें और अपनी धरती को पुनः हरी-भरी बना सकें।
- वन संरक्षण एवं प्रबन्धन कार्यक्रमों के मुख्य लक्ष्य हैं:—
 1. व्यक्तियों एवं उद्योगों को कच्चे माल के रूप में वनोत्पादों की निरन्तर आपूर्ति करना तथा सुविधा प्रदान करना।
 2. वन क्षेत्र की संरक्षा एवं पुनर्स्थापना करना।
- इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वानिकी (forestry) की कुछ प्रमुख विधियों को क्रियान्वित किया जाना चाहिए, जैसे— उत्पादन वानिकी (Production forestry) और सुरक्षा वानिकी (Protection forestry)।
- उत्पादन वानिकी का प्रमुख उद्देश्य होता है, प्राकृतिक वनों के अलावा जो खाली भूमि उपलब्ध हो, उस पर वृहद् नवीकरण करना।
- उत्पादन वानिकी के कई प्रकार हैं:—
 1. **आर्थिक वानिकी**
 - इसमें तेजी से बढ़ने वाली वृक्ष प्रजातियों का उत्पादन करके व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, जैसे—यूकेलिप्टस आदि प्रजातियों का वृक्षारोपण।
 2. **सामाजिक वानिकी**
 - अन्न उत्पादन के लिए अनुपयुक्त एवं खाली भूमि पर वृक्षों और झाड़ीदार पौधों को उगाना ताकि ईंधन और पशुओं को चारा उपलब्ध हो सकेगा।

- इस हेतु सड़कों एवं रेलमार्गों के किनारे तथा खाली कृषि भूमि एवं सामुदायिक भूमि पर उपयुक्त एवं स्थान के अनुकूल वृक्षों को लगाया जाना चाहिए।

3. कृषि वानिकी

- वृक्षों के बीच-बीच में शाकीय जाति की कृषि करना। इससे वृक्ष सुरक्षित रहेंगे और उन्हें काटे बिना खेती भी की जा सकेगी। इस प्रकार की कृषि वानिकी को पर्वतीय विधि (Taungya system) कहते हैं।
- कृषि वानिकी की एक अन्य विधि भी है जिसे विस्थापित (झूम) खेती (Jhum) कहते हैं।
- वनों को काटकर और उन्हें जलाकर कुछ वर्षों तक उस स्थान पर खेती की जाती है और फिर बाद में जंगल की पुनर्वृद्धि के लिए उस स्थान को छोड़ दिया जाता है।
- सुरक्षा वानिकी का प्रमुख उद्देश्य नष्ट हो रहे वनों की सुरक्षा करना है।
- इससे न केवल वनस्पतियों को बल्कि वनों में रहने वाले जीवन-जन्तुओं और इनकी विभिन्न लुप्तप्राय प्रजातियों को बचाया जा सकेगा।
- वन उत्पादों एवं लकड़ी के वनों से निकलते जाने का वनों के ऊपर कोई दुष्प्रभाव न पड़े इसके लिए आवश्यक है कि सघन वनों का वैज्ञानिक और व्यवस्थित प्रबन्ध किया जाय। मानव हस्तक्षेप से वनों को सुरक्षित रखने के लिए राष्ट्रीय उद्यान (National Park), आरक्षित वन (Reserve forest) तथा एकान्त वन (Sanctuary) की स्थापना की जानी चाहिए।
- वनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन हेतु हमें वनोन्मूलन (निर्वनीकरण) रोकने की दिशा में उचित एवं सार्थक प्रयास करना चाहिए।
- इस हेतु प्रत्येक व्यक्ति में पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत करने की आवश्यकता है ताकि वे वनों की उपयोगिता तथा निर्वनीकरण के दुष्परिणामों को समझ सकें।
- वन संरक्षण हेतु आवश्यक है कि—

1. बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण कार्यक्रम क्रियान्वित हो। इस हेतु सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय पर्वों को भी वृक्षारोपण कार्यक्रम के साथ जोड़ा जा सकता है।
2. वृक्षों की कटाई पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

3. पुराने बागीचों का पुनरुद्धार किया जाय।
4. नए बागीचों के निर्माण की योजना बनाई जाय और उसे क्रियान्वित किया जाय।

सरकार द्वारा वनों के संरक्षण के लिए किये गए उपाय

1. **केन्द्रीय वन आयोग की स्थापना**
 - केन्द्रीय सरकार ने 1965 में केन्द्रीय वन आयोग की स्थापना की। इस आयोग का मुख्य कार्य आँकड़े एकत्रित करना होता है।
 - इसके अतिरिक्त यह तकनीकी सूचनाओं को प्रसारित करने, बाजारों के बारे में जानकारी प्राप्त करने व वनों के विकास में लगी संस्थाओं के कार्यों को समन्वित करने का कार्य करता है।
 - यह केन्द्रीय वन बोर्ड को तकनीकी सहायता भी देता है।
2. **भारतीय वन सर्वेक्षण संगठन की स्थापना (जून 1971)**
 - वन में वस्तुओं की उपलब्धता का पता लगाने के लिए।
3. **वन अनुसंधान संस्थान की स्थापना (1906) (देहरादून)**
 - मुख्य उद्देश्य है वनों से प्राप्त वस्तुओं के संबंध में अनुसंधान करना एवं वनों के संबंध में शिक्षा देना।
4. **काष्ठ कला प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना (1965)**
 - राज्य सरकार के अधिकारियों एवं अन्य कर्मचारियों को लकड़ी काटने का प्रशिक्षण देने के लिए।
5. **राज्य वन विकास निगमों की स्थापना**
6. **वन महोत्सव**
7. **भारतीय वन प्रबन्धन संस्थान (भोपाल) की स्थापना**
8. **वन संरक्षण अधिनियम**

जल संसाधन

- हमारी पृथ्वी का सबसे विशिष्ट तत्व जल है जो इसे सौरमण्डल के अन्य सभी ग्रहों से अलग अपनी विशिष्ट पहचान प्रदान करता है।

- जल के कारण ही पृथ्वी का वातावरण नमीयुक्त बना रहता है और तापमान प्राणियों के लिए सर्वाधिक अनुकूल बना रहता है।
- वस्तुतः पृथ्वी का लगभग तीन चौथाई भाग महासागरों से ढँका हुआ है।
- यह पृथ्वी के सम्पूर्ण जल का लगभग 97.5 प्रतिशत है जो अत्यन्त ही खारा (Saline, लवणीय) है।
- शेष 2.5 प्रतिशत जल मृदु (fresh, अलवणीय) है किन्तु मानव के उपयोग हेतु प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं है।
- ध्रुवों एवं ग्लेशियर में बर्फ के रूप में 1.97 प्रतिशत
- भूमिगत जल के रूप में 0.50 प्रतिशत
- झीलों एवं नदियों में 0.02 प्रतिशत
- मिट्टी में 0.01 प्रतिशत
- वातावरण में 0.0001 प्रतिशत
- इस प्रकार मृदु जल का अत्यन्त अल्प भाग ही मानवों के उपयोग के लिए उपलब्ध है।
- इसका वितरण भी सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक समान नहीं है।
- यह अलग-अलग देशों की भौगोलिक स्थिति के ऊपर निर्भर करता है।
- समुद्र की सतह से तथा भू-सतह से जल का वाष्पीकरण होता है जो वर्षा के रूप में पुनः समुद्र तथा धरती की सतह पर आ जाता है।
- भू-सतह का जल नदियों के माध्यम से तथा भूगर्भ प्रवाह से पुनः समुद्र में पहुँच जाता है। इस प्रकार जल चक्र बनता है और वाष्पीकरण वर्षा में संतुलन बना रहता है।

समग्र जल प्रबंधन सूचकांक

- सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद की खोज में, नीति आयोग विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों पर संकेतक विकसित करने पर जोर दे रहा है।
- फरवरी 2018 में, नीति अयोग ने 'स्वस्थ राज्यों, प्रगतिशील भारत' पर एक रिपोर्ट जारी की, जिसमें विभिन्न स्वास्थ्य मापदंडों में राज्यों / केंद्र शासित प्रदेशों की रैंकिंग शामिल थी।
- दिशा में एक कदम और आगे बढ़ने और जीवन के लिए पानी की महत्वपूर्णता को ध्यान में रखते हुए, नीति आयोग ने समग्र जल प्रबंधन सूचकांक (CWMI) पर एक रिपोर्ट तैयार की है।

एक महत्वपूर्ण उपकरण:

- जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन में राज्यों / केंद्र शासित प्रदेशों के प्रदर्शन का आकलन और सुधार करने के लिए CWMI एक महत्वपूर्ण उपकरण है।
- यह जल संसाधन मंत्रालय, पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय और सभी राज्यों / केंद्र शासित प्रदेशों के साथ साझेदारी में अपनी तरह के पहले जल डेटा संग्रह अभ्यास के माध्यम से किया गया है।
- सूचकांक राज्यों के लिए और संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों / विभागों के लिए उपयोगी जानकारी प्रदान करेगा और उन्हें जल संसाधनों के बेहतर प्रबंधन के लिए उपयुक्त रणनीति तैयार करने और लागू करने में सक्षम करेगा। इसके अलावा विषय पर एक वेब पोर्टल भी लॉन्च किया गया है।
- रिपोर्ट गुजरात को संदर्भ वर्ष (2016-17) में पहले स्थान पर रखती है, इसके बाद मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र है।
- उत्तर पूर्वी और हिमालयी राज्यों में, 2016-17 में त्रिपुरा को नंबर 1 घोषित किया गया, इसके बाद हिमाचल प्रदेश, सिक्किम और असम हैं।
- सूचकांक में वृद्धिशील परिवर्तन (2015-16 के स्तर से अधिक) के मामले में, राजस्थान सामान्य राज्यों में नंबर एक स्थान रखता है और त्रिपुरा उत्तर पूर्व और हिमालयी राज्यों में पहले स्थान पर है।
- नीति आयोग भविष्य में वार्षिक आधार पर इन रैंकों को प्रकाशित करने का प्रस्ताव करता है।
- समग्र जल प्रबंधन सूचकांक (CWMI) के बारे में
- सीडब्ल्यूएमआई को नीति आयोग द्वारा विकसित किया गया है, जिसमें 9 व्यापक क्षेत्र शामिल हैं, जिसमें 28 विभिन्न संकेतक हैं जिनमें भूजल के विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है, जल निकायों की पुनर्स्थापना, लसचाई, कृषि कार्य, पेयजल, नीति और शासन (बाक्स -1)। विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए, रिपोर्टिंग राज्यों को इन समूहों में अलग-अलग हाइड्रोलॉजिकल स्थितियों के लिए दो विशेष समूहों उत्तर पूर्वी और हिमालयी राज्यों 'और जव अन्य राज्यों' में विभाजित किया गया था।

जल का उपयोग

- जल की उपयोगिता अनेक क्षेत्रों में है, जैसे—

1. पीने में
2. भोजन पकाने में
3. कपड़ों धोने में
4. स्नान एवं अन्य दैनिक क्रियाओं में
5. उद्योगों में
6. खेती में

जल का अति उपयोग (Excessive Use of Water)

- सम्पूर्ण पर्यावरण में पीने योग्य जल मात्र 0.2% ही है किन्तु मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु मात्र इसका अंधाधुंध उपयोग ही किया है, इसे संरक्षित करने के बारे में कभी नहीं सोचा।
- चूँकि जल अपने प्राकृतिक चक्र से सदैव नवीनीकृत होता रहा है, अतः इसे कभी समाप्त न होने वाला संसाधन मान लिया गया और लापरवाही के साथ, बिना राक-टोक के इसका अपव्यय एवं अतिदोहन किया गया।
- पिछली लगभग दो शताब्दियों में जिस तीव्र गति से विश्व की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में बदलाव आया है, जिस तेजी से कृषि और प्रौद्योगिकी में वृद्धि हुई है, और जिस तीव्र गति से मानव जनसंख्या में वृद्धि हुई है, उसने जल के सम्बन्ध में चली आ रही इस धारणा को परिवर्तित करने के लिए बाध्य कर दिया है कि जल कभी खत्म नहीं होगा।
- वास्तव में पृथ्वी पर मृदु जल अत्यल्प मात्रा में है।
- दिनोंदिन अधिकाधिक लोग इसका उपयोग एवं उपभोग करते जा रहे हैं। धीरे-धीरे जल का भंडार कम होता जा रहा है। आगामी कुछ वर्षों में ही पेय जल उपलब्ध कराना एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर सामने आएगा।
- आज विश्व की लगभग चालीस प्रतिशत जनसंख्या ऐसे स्थानों पर निवास कर रही है जहाँ जल का भीषण अभाव है। ऐसे स्थान शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र कहे जाते हैं।
- इन क्षेत्रों के निवासियों के अपने दैनिक कार्यों तथा कृषि आदि के लिए भारी मात्रा में जल की आवश्यकता पड़ती है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक ओर वे अत्यधिक समय तथा श्रम का व्यय करते हैं तो दूसरी ओर नदी, तालाब, झील आदि के जल का अति दोहन करते हैं।
- सतही जल के इस अतिदोहन से आस-पास की भूमि की नमी कम होने लगती है जो कालान्तर में सूखे की समस्या को जन्म देती है।
- चूँकि शुल्क क्षेत्रों में कृषि के लिए अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, अतः अत्यधिक सिंचाई किए जाने से मिट्टी में लवण एकत्र होने लगाते हैं और भूमि की गुणवत्ता में कमी आती है, उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है।
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति के कारण यंत्रों के माध्यम से मानव भूगर्भ जल का दोहन आवश्यकता से अधिक मात्रा में कर रहा है, जिसका दुष्परिणाम यह है कि भूमिगत जल स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है।
- तटीय क्षेत्रों में गिरते हुए भूमिगत जल स्तर के कारण समुद्री जल का बहाव पेयजल कूपों की ओर होने लगता है जिससे पेय जल की गुणवत्ता घटती है।
- समुद्र तट पर ज्वारभाटा के कारण निर्मित क्षेत्रों में जब सतही जल का अत्यधिक दोहन किया जाता है तो धीरे-धीरे वहाँ की भूमि अधिकाधिक लवणीय हो जाती है और उसकी उत्पादकता घट जाती है।
- तेज वर्षा का जल पहाड़ी ढलानों वाले क्षेत्रों में तीव्र गति से नीचे की ओर आता है।
- इस जलप्रवाह के साथ-साथ मृदाक्षरण भी होता है और नीची भूमिवाले क्षेत्रों में बाढ़ की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- मृदा क्षरण के कारण नदियों आदि के मार्ग में मिट्टी जमा होने लगती है जो नदियों के प्रवाह को बाधित करती है और जल जीवों के जीवन को क्षति पहुँचाती है।
- भूगर्भ जल के अति दोहन के कारण धरती के अन्दर रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है।
- इसे भरने के लिए जब धरती के अन्दर चट्टानें खिसकती हैं जो धरती में कम्पन होता है और भूकम्प की समस्या उत्पन्न होती है।
- इस प्रकार सतही एवं भूगर्भ जल के अति दोहन से अनेक दुष्परिणाम निकलते हैं जो भारी मात्रा में धन-जन की हानि का कारण बनते हैं।

जल संरक्षण एवं प्रबन्धन

जल का संरक्षण एवं प्रबन्धन करने हेतु नीचे कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं जिनमें से कुछ तो वैयक्तिक अथवा छोटे स्तर पर अपनाए जा सकते हैं, जबकि कुछ को कार्यान्वित करने हेतु सरकारी स्तर पर सहयोग की आवश्यकता होगी-

- जल के दुरुपयोग को रोका जाये।
- सिंचाई की नवीन विधियों का उपयोग किया जाये ताकि कम जल में अधिक भूमि की सिंचाई हो सके। पारम्परिक सिंचाई की विधियों द्वारा खेतों में दिए गए जल का मात्र 50 प्रतिशत ही पौधों द्वारा ग्रहण हो पाता है।
- जल भंडार की वृद्धि के लिए वानिकीकरण को बढ़ावा दिया जाय।
- जलपिंडों, जलसंभरों तथा जल विभाजकों का निर्माण किया जाय।
- वर्षा जल का संचयन किया जाय। इसे हेतु बाँध व जलाशय बनाए जायें।
- उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले जल को शोधित और पुनर्चक्रित करके पुनः उपयोग में लाने योग्य बनाया जाय।
- 'अवजल शोधन संयंत्रों' की स्थापना की जाय।
- समुद्री जल का शोधन कर अलवणीय बनाया जाये, ताकि पेय जल के रूप में प्रयुक्त किया जा सके।
- जल के अभाव वाले क्षेत्रों में जल की प्राकृतिक आपूर्ति के लिए नहरों, नालियों के माध्यम से नदियों आदि के जल का मार्ग-मोड़ा जाये।
- नदी, तालाब आदि जल संग्रहों की गहराई को निरन्तर नियन्त्रित रखा जाय, अर्थात् उनके तलों में जमी हुई मिट्टी एवं तलछट की नियमित निकासी की जाये ताकि उनकी गहराई बनी रहे।

खनिज संसाधन

- ये प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों से मानव जीवन पर अपना प्रभाव रखते हैं।
- वर्तमान औद्योगिक समाज और दैनिक जीवन निर्वाह में खनिज तत्व अति आवश्यक है।
- यह संसाधन सीमित तथा अनव्यकरणीय (non-renewable) है।
- पाषाण युग, ताम्र युग, लौह युग, इस्पात युग, अणु युग खनिजों के महत्व को दिग्दर्शित करते हैं।

- मानव का अद्यतन विकास “खनिज सभ्यता” से ओतप्रोत है।
- खनिज उत्खन प्राचीन उद्योग रहा है।
- युगान्तर में खनन प्रविधियों में अन्तर आता गया, आधुनिक मानव अनेक यन्त्रों, आयुधों एवं वस्तुओं का उपयोग करता रहा है, ये सभी खनिजों से निर्मित होते हैं।
- कृषि, उद्योग, परिवहन, आभूषण, आवास एवं संचार आदि क्षेत्रों में खनिजों का व्यापक उपयोग होता है।
- खनिजों के तीन वर्ग हैं :-
 1. अधात्विक (Non metallic) खनिज
 - अभ्रक, गंधक, ग्रेफाइट, एस्बेस्टस, हीरा, फास्फेट, रॉक फास्फेट, जिप्सम, क्रायोलाइट, लाइमस्टोन आदि।
 2. धात्विक (Metallic) खनिज
 - सोना, चाँदी, लोहा, सीसा, एल्यूमिनियम, जस्ता, ताँबा, मैंगनीज, क्रोमियम, टंगस्टन, आदि।
 3. खनिज ईंधन (Mineral Fuels)
 - पेट्रोलियम, कोयला, प्राकृतिक गैस, अणुशक्ति उत्पादक खनिज आदि।
 - इन खनिज पदार्थों का वितरण विश्व में असमान है और वे विरल संसाधन (rare resources) की श्रेणी में आते हैं।

खनिजों का विदोहन

- खनिज पदार्थों का उपयोग उनके विदोहन (Exploitation) पर निर्भर है।
- जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण के कारण खनिजों के विदोहन में द्विगुणित वृद्धि हुई है।
- अत्यधिक भौतिकवादी जीवनदर्शन, प्राविधिक एवं औद्योगिक क्रान्ति के कारण रत्न गर्भा के गर्भ से खनिजों का निरन्तर खनन किया जा रहा है।
- अधिकांश खनिज समापनीय हैं, इनकी संचित मात्रा सीमित है।
- मानव समाज के भौतिक स्तर के अभिवर्द्धन हेतु खनिजों का तीव्र विदोहन औद्योगिक देशों की सम्पन्नता की धारा से प्रेरित है।

- खनिज पदार्थ दुर्गम क्षेत्रों में पाये जाते हैं, इन क्षेत्रों में यातायात एवं संचार के साधन, आवास, कारखानों, भण्डारगृह आदि की व्यवस्था करनी होती है।
- स्थल विकास के समय वनस्पतियों का विनाश होता है। मृदा वनस्पति विहीन हो जाती है, फलतः मिट्टी का कटाव प्रारम्भ हो जाता है, कृषि उत्पादन घटने लगता है।
- जल स्रोत विशेषतः नदियाँ खनिजों के घुलने से विषाक्त एवं प्रदूषित हो जाती हैं। वायु में खनिज पदार्थ के कण एवं धुआँ मिल जाता है और वायु प्रदूषण उत्पन्न करता है जिससे मानव अस्वस्थ हो जाता है।
- वायु प्रदूषण से फेफड़े की व्याधियाँ होने लगती हैं।
- खान से उड़ने वाले धूल करण चतुर्दिक फैले वृक्षों के पत्तों पर गिरकर जमने लगते हैं वृक्षों एवं वनस्पतियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कोयले की खानों में आग लगने से अनेक समस्याओं का जन्म होता है।
- यह आग कभी-कभी खतरनाक रूप धारण कर लेती है। जिन क्षेत्रों में खनिज मिलते हैं, वहाँ का भौतिक वातावरण प्रायः सुखद नहीं होता।
- समयान्तर में खदानें गहरी होती चली जाती हैं और खनिकों को अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण में कार्य निष्पादित करना होता है। खान का मानव और पर्यावरण दोनों पर ही प्रतिकूल प्रभाव दिखाई देता है।
- खनिज पदार्थों का विदोहन एक जोखिमयुक्त तथा कष्टदायक कार्य है। खनिजों के अत्यधिक विदोहन से पर्यावरण पर निम्नलिखित प्रतिकूल प्रभाव दिग्दर्शित होते हैं-
 - खनिज पदार्थों के खान से परती भूमि तैयार हो जाती है जिसे परित्यक्त भूमि (derelict land) कहते हैं, तथा भूमि की उर्वराशक्ति नष्ट हो जाती है।
 - खुदाई स्थान के चतुर्दिक वन-विनाश के दृश्य दिखाई देते हैं तथा वनस्पतियाँ विनष्ट हो जाती हैं।
 - औद्योगीकरण के कारण कृषि भूमि क्षेत्र में कमी होती है। भूमिगत पदार्थ के विदोहन से धरातलीय सतह के अवतलन का खतरा होता है।
- खनिज पदार्थों का विदोहन आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है परन्तु अन्धाधुन्ध विदोहन उचित नहीं है।
- स्थिर विकास का लक्ष्य तभी प्राप्त होगा जब खनिज पदार्थों का तर्कसंगत, विवेकसंगत तथा न्यायसंगत उपयोग हो।

खनिज संसाधनों का संरक्षण

- खनिज समापनीय संसाधन हैं, इनका नवीनीकरण नहीं होता।
- इनके निर्माण में करोड़ों वर्ष लगते हैं अतः इनका उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से होना चाहिए।
- खनिजों के संरक्षण के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं -
 - खनन प्रक्रिया में होने वाली क्षति को कम करने का प्रयत्न किया जाय।
 - कम मात्रा में उपलब्ध खनिजों के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।
 - ऊर्जा प्रधान खनिजों के उपयोग को सीमित करना चाहिए ताकि प्रदूषण कम हो और खनिज का उपयोग भी दीर्घकालिक हो सके।
 - खनिजों के वैकल्पिक तत्वों की खोज की जाय। बहुत से उद्योगों में कल पुर्जे धातुओं के स्थान पर प्लास्टिक के बनाए जा रहे हैं। पेट्रोलियम के स्थान पर वनस्पति तेल का उपयोग किए जाने सम्बन्धी शोध चल रहे हैं।
 - एक उद्योग के अपशिष्ट (waste) को दूसरे उद्योग में कच्चे माल की तरह प्रयुक्त किया जाय।
 - उपयोग की प्रौद्योगिकी में सुधार किया जाय अर्थात् खनिज तत्वों का पुनर्चक्रण (recycling) एवं पुनरुपयोग किया जाय।
- पुनर्चक्रण एवं पुनरुपयोग द्वारा केवल खनिज सम्पदा का संरक्षण और नवीनीकरण ही नहीं होता बल्कि इनके अन्य भी कई उपयोग हैं:-
 - उत्खनन के कारण भूमि को बेकार होने से बचाते हैं।
 - ठोस अपशिष्ट (solid waste) की मात्रा में कमी करते हैं।
 - ऊर्जा की खपत को कम करके पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा करते हैं।

खाद्य संसाधन

- खाद्य पदार्थों के रूप में मानव वनस्पतियों, पशुओं, पशु उत्पादों, पक्षियों तथा जल जीवों का उपयोग करता है।
- हमारे भोजन का लगभग 90% भाग केवल 15 वनस्पतियों और 8 जन्तुओं के द्वारा पूर्ण किया जाता है।

- वनस्पतियों में भी सम्पूर्ण विश्व के प्रमुख रूप से चार फसलें-गेहूँ, चावल, मक्का और आलू हैं जो कुल खाद्य उत्पादन का एक अत्यन्त बड़ा हिस्सा हैं।
 - विश्व की अधिकांश जनसंख्या अपने भोजन के लिए अनाज पर निर्भर है।
 - जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ अनाज की खपत में भी वृद्धि हुई है।
 - माँस का उपयोग करने वालों की संख्या काफी कम है और माँस पर जीवन-यापन करने वालों की संख्या तो और भी सीमित है।
 - मनुष्य जिन पशुओं के उत्पादों (माँस, दूध, अंडे आदि) का उपयोग कर रहा है, वे भी काफी सीमा तक अनाजों पर निर्भर हैं।
 - अनाज अथवा वनस्पति का उत्पादन कृषि द्वारा किया जाता है। कृषि द्वारा खाद्य उत्पादन की दो प्रणालियाँ हैं:-
 1. परम्परागत कृषि
 2. कृषि प्रौद्योगिकी
1. **परम्परागत कृषि:** विधियों का उपयोग आज भी अनेक विकासशील देशों में किया जाता है।
 - इस विधि से उत्पादन इतना कम होता है कि जीवन निर्वाह अत्यन्त कठिन हो जाता है।
 - साथ ही, इस विधि में उपयोग में श्रम भी अधिक लगता है।
 - पारम्परिक कृषि प्रणाली में फसलों की उपज बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों, उर्वरकों तथा वृहद स्तर पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।
 2. **कृषि प्रौद्योगिकी:** का उपयोग मुख्य रूप से विकसित देशों में किया जाता है।
 - आधुनिक उपकरणों की सहायता से बड़े पैमाने पर खेती करके प्रचुर मात्रा में फसल का उत्पादन किया जाता है।
 - इसके उपयोग में सिंचाई हेतु पर्याप्त जल, विविध प्रकार के उर्वरक, कीटनाशक तथा डीजल, पेट्रोल आदि ईंधन की आवश्यकता पड़ती है।
 - अनाज के अतिरिक्त पशु उत्पादों जिनमें माँस, दुग्ध, अंडे आदि प्रमुख हैं, का उपयोग की खाद्य सामग्री के रूप में मानव द्वारा किया जाता है।

- पशु-पक्षियों का शिकार कर उनका उपयोग भी मानव खाद्य सामग्री के रूप में करता है।
- इसके अतिरिक्त जल जीवों जैसे-मछली, केकड़ा, घेंघे, झींगा आदि भी खाद्य संसाधन के रूप में मानवों द्वारा प्रयुक्त किए जाते हैं।
- जिन पशुओं को खाद्य संसाधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है वे भी वनस्पतियों और अनाजों पर भोजन के लिए निर्भर रहते हैं।

जैविक खेती

पारिस्थितिक खेती से सब्जियाँ

जैविक खेती एक वैकल्पिक कृषि प्रणाली है, जो 20वीं सदी के प्रारंभ में तेजी से बदलती कृषि पद्धतियों की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ। जैविक खेती आज भी विभिन्न जैविक कृषि संगठनों द्वारा विकसित की जा रही है। यह जैविक खाद जैसे खाद खाद, हरी खाद, और हड्डियों के भोजन पर निर्भर करता है और फसलों के रोटेशन और साथी रोपण जैसी तकनीकों पर जोर देता है। जैविक कीट नियंत्रण, मिश्रित फसल और कीट शिकारियों को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। आमतौर पर, कार्बनिक मानकों को सिंथेटिक पदार्थों को प्रतिबंधित या कड़ाई से सीमित करते हुए स्वाभाविक रूप से होने वाले पदार्थों के उपयोग की अनुमति देने के लिए डिज़ाइन किया गया है। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक रूप से पाइरेथ्रिन और स्टन जैसे कीटनाशकों की अनुमति है, जबकि सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों को आम तौर पर निषिद्ध किया जाता है। सिंथेटिक पदार्थों को अनुमति दी जाती है, उदाहरण के लिए, तांबा सल्फेट, तत्व सल्फर और Ivermectin। पशुपालन में आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव, नैनोमैटेरियल्स, मानव सीवेज कीचड़, पौधों के विकास नियामकों, हार्मोन और एंटीबायोटिक का उपयोग निषिद्ध है। जैविक खेती की सलाह देने के कारणों में स्थिरता में लाभ शामिल हैं, खुलापन, आत्मनिर्भरता, स्वायत्तता / स्वतंत्रता, स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा और खाद्य सुरक्षा।

1972 में स्थापित जैविक कृषि संगठनों के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय छाता संगठन, इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स (IFOAM) द्वारा निर्धारित मानकों के आधार पर कई देशों द्वारा जैविक कृषि विधियों को अंतर्राष्ट्रीय रूप से विनियमित और कानूनी रूप से लागू किया गया है। जैविक कृषि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है:

तरीके

कैपे, कैलिफोर्निया में मिश्रित सब्जियों की जैविक खेती

‘जैविक कृषि एक उत्पादन प्रणाली है जो मिट्टी, पारिस्थितिक तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखती है। यह प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ आदानों के उपयोग के बजाय स्थानीय परिस्थितियों, जैव विविधता और चक्र पर निर्भर करती है, जो कि स्थानीय प्रभाव के अनुकूल होती है। जैविक कृषि परंपरा, नवाचार और विज्ञान को जोड़ती है। साझा पर्यावरण को लाभान्वित करने और निष्पक्ष संबंधों और सभी के लिए जीवन की एक अच्छी गुणवत्ता को बढ़ावा देने के लिए।

इंटरनेशनल फेडरेशन आफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स जैविक खेती के तरीके प्राकृतिक रूप से होने वाली जैविक प्रक्रियाओं के आधार पर पारंपरिक खेती के तरीकों के साथ पारिस्थितिकी और आधुनिक तकनीक के वैज्ञानिक ज्ञान को जोड़ते हैं। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में जैविक खेती के तरीकों का अध्ययन किया जाता है। जबकि पारंपरिक कृषि सिंथेटिक कीटनाशकों और पानी में घुलनशील कृत्रिम रूप से शुद्ध उर्वरकों का उपयोग करती है, जैविक किसानों को प्राकृतिक कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग करने के लिए नियमों द्वारा प्रतिबंधित किया जाता है। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करें: मिट्टी में नाइट्रोजन को ठीक करने के लिए गलियां लगाई जाती हैं, प्राकृतिक कीट शिकारियों को प्रोत्साहित किया जाता है, कीटों को भ्रमित करने और मिट्टी को नवीनीकृत करने के लिए फसलों को घुमाया जाता है, और पोटेशियम बाइकार्बोनेट और शहतूत जैसे प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। नियंत्रण रोग और मातम। आनुवंशिक रूप से संशोधित बीज और जानवरों को बाहर रखा गया है।

जबकि जैविक रूप से अत्यधिक घुलनशील लसथेटिक आधारित उर्वरकों की तुलना में कार्बन आधारित उर्वरकों के उपयोग के कारण जैविक रूप से पारंपरिक रूप से भिन्न है, लसथेटिक कीटनाशकों के बजाय जैविक कीट और जैविक कीट नियंत्रण, जैविक खेती और बड़े पैमाने पर पारंपरिक खेती पूरी तरह से अनन्य नहीं हैं। जैविक कृषि के लिए विकसित कई पद्धतियाँ अधिक परंपरागत कृषि द्वारा उधार ली गई हैं। उदाहरण के लिए, एकीकृत कीट प्रबंधन एक बहुपक्षीय रणनीति है जो जब भी संभव हो कीट नियंत्रण के विभिन्न जैविक तरीकों का उपयोग करता है, लेकिन पारंपरिक खेती में केवल अंतिम उपाय

के रूप में सिंथेटिक कीटनाशक शामिल हो सकते हैं। जैविक खेती से फसल की विविधता को बढ़ावा मिलता है क्योंकि पालीकल्चर (एक ही स्थान पर कई फसलें) के लाभ, जो अक्सर जैविक खेती में लगाए जाते हैं। विभिन्न प्रकार की वनस्पति फसलों को रोपना लाभकारी कीड़ों, मिट्टी के सूक्ष्मजीवों और अन्य कारकों की एक विस्तृत श्रृंखला का समर्थन करता है जो समग्र कृषि स्वास्थ्य को जोड़ते हैं। फसल विविधता पर्यावरण को पनपने में मदद करती है और प्रजातियों को विलुप्त होने से बचाती है।

खाद्य संसाधन का अति उपयोग

- बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हरित क्रान्ति (green revolution) के कारण विश्व का खाद्य उत्पादन पहले की तुलना में लगभग तीन गुना बढ़ गया है, किन्तु विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या के खाद्यान्न की प्रगति को काफी पीछे छोड़ दिया है।
- यह समस्या विकासशील देशों में और भी अधिक विकराल है जहाँ जनसंख्या वृद्धि दर तथा गरीबी उच्च स्तर पर है।
- खाद्यान्नों के उत्पादन में यद्यपि अधिक वृद्धि हुई किन्तु जनसंख्या में उससे भी तीव्र वृद्धि हुई है, फलतः विश्व में खाद्य संकट (Food Crisis) उत्पन्न हो गया है।
- खाद्य पदार्थों की कमी के कारण अनेक विकासशील देश कुपोषण और भुखमरी के शिकार हैं।
- बढ़ती हुई जनसंख्या की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिकाधिक अन्न उपजाने के लिए प्रचुर मात्रा में उर्वरकों और फसलों को बचाने के लिए कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है।
- इनके अत्यधिक उपयोग के अनेक दुष्प्रभाव हैं:-
 - कृषि भूमि की स्थापना के लिए वन, घास स्थल, नमीयुक्त स्थल जैसे पारिस्थितिक तंत्रों के समाप्त करना पड़ता है जिससे जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाते हैं और जैव विविधता को क्षति पहुँचती है।
 - कृषि विधियाँ भूमि, जल और वायु को प्रभावित करती हैं।
 - हरित क्रान्ति में कुछ उच्च उत्पादक प्रजातियों की फसल पर जोर दिया गया जिससे अनेक जंगली प्रजातियाँ क्षति ग्रस्त हुई हैं।

- उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति में गिरावट आती है। चरम स्थिति में उपजाऊ भूमि क्षारीयता के कारण मरुभूमि भी बन सकती है।
- आधुनिक कृषि यंत्रों के अत्यधिक उपयोग में जीवाश्म ईंधन (डीजल, पेट्रोल आदि) प्रयुक्त होता है जो पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा देता है। इनसे हरित गैस प्रभाव में वृद्धि होती है जो भूमंडलीय तापमान में वृद्धि (global warming) का कारण बनती है।
- कृषि प्रौद्योगिकी में अधिक उत्पादन एवं फसलों को सुरक्षित रखने के लिए भारी मात्रा में कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इनसे मिट्टी, जल तथा वायु तीनों प्रदूषित होते हैं। इनका प्रभाव फसलों पर भी होता है। इन प्रदूषित फसलों का उपयोग करने से स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
- ये कीटनाशक लम्बे समय तक मिट्टी में बने रहते हैं और वर्षा तथा सिंचाई के जल रिसाव के कारण मिट्टी के ये कीटनाशक जल को प्रदूषित कर देते हैं। यह जल भूमिगत जल के रूप में अथवा सतही जल के रूप में अनेक जीवों को हानि पहुँचाता है।

ऊर्जा संसाधन

- मानव इसका उपयोग भोजन पकाने, प्रकाश करने, कृषि कार्य तथा परिवहन आदि अनेक कार्यों में करता है।
- सामान्य तौर पर समस्त ऊर्जा संसाधनों को दो वर्गों में रखा जा सकता है:-
 1. नव्यकरणीय (renewable)।
 2. अनव्यकरणीय (non-renewable)
- सभी प्रकार के नव्यकरणीय ऊर्जा संसाधन प्राकृतिक गतिविधियों के परिणाम स्वरूप होते हैं, जिससे उनका असीमित उपयोग किया जा सकता है। ये पर्यावरण के लिए अपेक्षाकृत कम हानिकारक होते हैं।
- पेट्रोलियम उत्पाद, जैसे-प्राकृतिक गैस, कोयला, डीजल, पेट्रोल तथा नाभिकीय ऊर्जा अनव्यकरणीय ऊर्जा संसाधन हैं।
- विश्व का जीवाश्म ईंधन (fossil fuel) तथा यूरेनियम (नाभिकीय ऊर्जा का प्रमुख स्रोत) का भंडार सीमित है और धीरे-धीरे यह अपनी समाप्ति की ओर अग्रसर है।

पारम्परिक ऊर्जा स्रोत (Conventional Energy Sources)

- मानव द्वारा कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस आदि का ऊर्जा स्रोत कहा जाता है।
- इन ऊर्जा स्रोतों का निर्माण वनस्पतियों और जीवों के भूमि में दबने के कारण हुआ है, इसलिए इन्हें जीवाश्म ऊर्जा स्रोत भी कहा जाता है।
- ये ईंधन भूगर्भ में करोड़ों वर्षों में बनते हैं।
- इनकी उपलब्धता सीमित स्थानों तक ही है। इन जीवाश्म ईंधनों को भूगर्भ से खनन के द्वारा प्राप्त किया जाता है।
- इनकी सीमित मात्रा और अन्धाधुंध उपयोग के कारण ये धीरे-धीरे समाप्ति की ओर अग्रसर हैं।
- ये पारम्परिक ऊर्जा स्रोत (जीवाश्म ईंधन) ऊर्जा के उत्तम गुणों से युक्त हैं किन्तु इनके उपयोग में कई कठिनाइयाँ हैं:-
 - ये नव्यकरणीय (renewable) नहीं हैं, अर्थात् इनका उपयोग बार-बार नहीं किया जा सकता। इनकी मात्रा सीमित है।
 - इनकी मात्रा समाप्तप्राय होने के कारण इनके मूल्य में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। परिवहन की कठिनाइयों के कारण भी इनकी उपलब्धता दिनोदिन कठिन होती जा रही है।
 - इनके उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण होता है।
- पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त ईंधन (ऊर्जा) का उपयोग लम्बे समय से दिन प्रतिदिन के कार्यों के निष्पादन के लिए किया जाता रहा है।
- चूँकि ये प्राकृतिक संसाधन अनव्यकरणीय हैं अतः इनका अन्धाधुंध उपयोग निकट भविष्य में ही हमें इन संसाधनों से विहीन कर देगा।
- ऊर्जा प्राप्ति के जीवाश्म ईंधन के उपयोग से अनेक प्रकार की गैसों व कणीय पदार्थ उत्सर्जित होते हैं जो पर्यावरण में प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।
- वैश्विक तापमान में वृद्धि होना, वायु प्रदूषण, अम्ल वर्षा, ते रिसाव आदि जीवाश्म ईंधन के उपयोग के दुष्परिणाम हैं, जो पर्यावरण के लिए क्षतिकारक हैं।
- अनव्यकरणीय ऊर्जा संसाधनों के उपयोग को सीमित किया जाये तथा उनके स्थान पर नव्यकरणीय अर्थात् असीमित ऊर्जा संसाधनों के उपयोग को अपनाया जाय।

अपारम्परिक/वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत (Non-conventional Energy Sources)

- इन स्रोतों का उपयोग परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के विकल्प के रूप में किया जाता है अतः इन्हें वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत अथवा ऊर्जा के अपारम्परिक स्रोत कहा जाता है।
- ये स्रोत नव्यकरणीय हैं अर्थात् सतत एवं अक्षय हैं और इनका बार-बार उपयोग किया जा सकता है।
- ये ऊर्जा स्रोत पर्यावरण के लिए कम हानिकारक हैं।
- वर्तमान तकनीकी परिवेश में नव्यकरणीय ऊर्जा संसाधन अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले हैं जिसके कारण इनके अपनाए जाने में बाधा आ रही है। वैज्ञानिक इन्हें सुलभ बनाने के लिए प्रयत्नरत हैं।
- वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों में 'सौर ऊर्जा' सबसे महत्वपूर्ण है जो ऊर्जा का अक्षय भंडार है। इसके अतिरिक्त अन्य वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत हैं:-
 - सौर ऊर्जा
 - बायो गैस
 - जल शक्ति
 - पवन ऊर्जा
 - ज्वारीय ऊर्जा
 - हाइड्रोजन
 - भू-तापीय ऊर्जा
 - एल्कोहल
 - लहरें या सागर तरंगों से ऊर्जा
 - चुम्बक द्रव्यगतिकी
 - महासागरीय उष्मा ऊर्जा

सौर ऊर्जा (Solar Energy)

- सूर्य ऊर्जा का मूल केन्द्र और ऊर्जा का अक्षय भंडार है।
- सूर्य द्वारा प्राप्त ऊर्जा का उपयोग प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में किया जाता है।
- सूर्य से सीधे प्राप्त होने वाली ऊर्जा विकिरण ऊर्जा (radiant energy) कहलाती है।
- इसका प्रत्यक्ष उपयोग मानव आदिकाल से फसल, घास, अनाज, मछली, मिर्च एवं अन्य उत्पादों को सुखाने के लिए करता चला आया है।
- सौर ऊर्जा को प्रत्यक्ष रूप से उष्मा प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है किन्तु इस विशाल ऊर्जा भंडार का मानव हित में उपयोग किया जाना समीचीन है।

- वैकल्पिक रूप में इस ऊर्जा को ताप एवं विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर दिया जाता है।
- इस प्रकार सौर प्रकाश का वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में उपयोग करने हेतु दो प्रकार से रूपान्तरण किया जा सकता है:-
 1. उष्मीय रूपान्तरण और
 2. विद्युतीय रूपान्तरण।

सौर प्रकाश का उष्मीय रूपान्तरण या सौर ताप

- सौर संग्राहकों के माध्यम से सूर्य के प्रकाश का उष्मान्ता बढ़ा कर उसका उष्मीय रूपान्तरण किया जाता है।
- इन संग्राहकों द्वारा एकत्रित ताप/उष्मा से पानी गर्म किया जा सकता है।
- उष्मीय रूपान्तरण के दो प्रकार के उपयोग हैं:-
 1. कम तापक्रम वाली उष्मा प्रणाली का उपयोग पानी गर्म करने तथा फसलों को सुखाने में किया जाता है।
 2. उच्च तापक्रम वाली उष्मा प्रणाली का उपयोग पानी को उच्च तापक्रम पर गर्म करके विद्युत उत्पादन के लिए किया जाता है।
- सूर्य का प्रकाश वस्तुओं के तापमान में वृद्धि कर देता है, यह तथ्य सर्व विदित है अर्थात् धूप में रखी वस्तुएँ गर्म हो जाती हैं।
- सामान्यतः सौर संग्राहकों में सूर्य की ऊर्जा प्राप्त करने के लिए शीशे की प्लेटें लगी रहती हैं और उसके नीचे काले रंग से रंगी हुई ताप की कुचालक प्लेट लगी रहती है।
- शीशे की प्लेटों को कुचालक प्लेट के बीच पानी अथवा वायु रहती है जो शीशे की प्लेट द्वारा अवशोषित ताप से गर्म होती रहती है।
- सूर्य के इसी तापीय विकिरण प्रभाव का उपयोग संग्राहक संयंत्रों के माध्यम से उष्मा प्राप्त करने के लिए किया जाता है।
- सूर्य के असीमित ऊर्जा भंडार पर आधारित ऊर्जा उत्पन्न करने वाले यंत्र-
 1. सोलर वाटर हीटर
 - यह घरेलू एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए पानी गर्म करने का आदर्श एवं प्रभावशाली संयंत्र हैं।

- घरेलू उपयोग के लिए इसे भवन की छत पर स्थापित किया जाता है।
 - इस संयंत्र में एक ताप संग्राहक एवं टंकी होती है।
 - कलेक्टर से पानी गर्म होता है और टंकी में जमा होता जाता है।
 - टंकी में जमा पानी को घर में नहाने, बर्तन, साफ करने, कपड़े साफ करने आदि के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।
 - टंकी से पानी उष्मा अवरोधित पाइपों के सहारे स्नान गृह तक लाया जा सकता है।
 - चूँकि पानी की टंकी भी उष्मा अवरोधित होती है, इसीलिए 50 से 60 डिग्री सेन्टीग्रेड तक गर्म पानी 24 घंटे उपलब्ध रहता है।
 - वर्षाकाल में इस प्रणाली में विद्युत संचरित प्रणाली का भी उपयोग किया जा सकता है।
 - 100 लीटर क्षमता वाले सोलर वाटर हीटर का मूल्य लगभग 9000.00 रुपये होता है। इसमें विद्युत संचरित प्रणाली का मूल्य सम्मिलित है।
 - इस संयंत्र को एक बार क्रय कर लेने के बाद विद्युत मूल्य नगण्य होता है। इसलिए लम्बे समय तक चलने के कारण अन्य विद्युत संयंत्रों की अपेक्षा सस्ता पड़ता है।
 - घरेलू वाटर हीटर के अतिरिक्त औद्योगिक कार्यों के लिए विकसित वाटर हीटर में ताप नियंत्रण प्रणाली भी लगी रहती है।
 - इस प्रणाली के कारण पानी एक निश्चित तापक्रम पर गरम करके प्रयोग में लाया जा सकता है।
- 2. सोलर सिस्टम**
- इस संयंत्र द्वारा आसुत जल (डिस्टिल वाटर) प्राप्त किया जाता है।
 - इस संयंत्र के अन्दर पानी डाल दिया जाता है।
 - सौर ताप के कारण अन्दर का जल वाष्प बनता है।
 - पुनः वाष्प ठंडा होकर संयंत्र में लगे पाइप के सहारे लगे स्टील जार में आसुत जल के रूप में इकट्ठा होता रहता है।
 - इस जल का उपयोग बैटरी में किया जाता है।
- 3. सोलर ड्रायर**
- कृषि उत्पादों तथा मसाले आदि को सुखाने के लिए सौर ड्रायर बहुत उपयोग संयंत्र है।

- इसमें अनाज बहुत जल्द सूखता है।
- अनाज को पक्षी, कीड़े नुकसान नहीं करते तथा गन्दगी धूल आदि नहीं पड़ती।
- अनाज मण्डियों एवं कृषकों के लिए यह महत्वपूर्ण यंत्र है।

4. लकड़ी का शुष्कन यंत्र

- सौर यंत्र काष्ठ उद्योग के लिए उपयोगी है। पेड़ से कटी लकड़ी इससे सुखाई जा सकती है।
- लकड़ी को खुला छोड़ देने पर वह न समान रूप से और न शीघ्र ही सूखती है।
- इस संयंत्र की सहायता से लकड़ी समान रूप से सूखती है।
- अब तक कोयले या विद्युत ऊर्जा पर आधारित लकड़ी शुष्कन यंत्र उपयोग में लाया जाता है।
- इसकी कीमत लगभग 10 लाख रुपये है लेकिन ऊर्जा व्यय न होने के कारण इसकी लम्बी अवधि तक उपयोग सस्ता ही रहेगा।

5. सोलर कूकर

- सोलर कूकर धातु का बना होता है।
- इसमें नीचे की तली और काला लेप होता है।
- गर्मी बढ़ने से खाना उबल जाता है।
- सौर कूकर में दाल, सब्जी, माँस, खीर आदि दो से ढाई घंटों में बन जाती है।
- इनमें बने भोजन में ईंधन व्यय नहीं होता और भोजन के जलने का डर भी नहीं होता।
- भोजन को गर्म करने या रखने के लिए इसका उपयोग किया जाता सकता है।
- इसमें रखे भोजन को गर्म करने या रखने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।
- इसमें रखे भोजन में धूल या गन्दगी नहीं पड़ सकती।
- इनमें बने भोजन के विटामिन, प्रोटीन आदि पोषक तत्व नष्ट नहीं होते।
- यदि इससे बने भोजन का हिसाब लकड़ी व गैस से बने भोजन से करें तो एक वर्ष में व्यय होने वाले ईंधन के व्यय से खरीदा जा सकता है।

सौर प्रकाश का विद्युतीय रूपान्तरण या सौर विद्युत

- सौर प्रकाश को विद्युत में परिवर्तित करने के लिए सौर सेलों का निर्माण किया गया है। इन सेलों में सिलिकन या गैलियम आर्सेनाइट के क्रिस्टल होते हैं।
- जब सूर्य की किरणें सौर सेलों के कुछ खास तरह के सेमी कण्डक्टर पर पड़ती हैं, तो बैटरी के अन्दर के पर्दे में आयनीकरण पैदा होता है। आयनीकरण के ऋणात्मक एवं धनात्मक आवेशों का समुचित उपयोग कर विद्युत उत्पादन किया जाता है।
- सौर सेलों द्वारा प्रकाश को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है।
- सौर सेलों द्वारा प्रकाश को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है। सौर ऊर्जा के इस रूपान्तरण को सौर प्रकाश वोल्टीय ऊर्जा रूपान्तरण कहा जाता है।
- पिछले वर्षों सौर सेलों की आवश्यकता कृत्रिम उपग्रहों में विद्युत चालित उपकरणों को चलाने के लिए हुई। कृत्रिम उपग्रहों में विद्युतचालित यंत्रों के लिए ऊर्जा सौर सेलों से ही प्राप्त होती है।
- सौर सेलों हेतु सिलिकन को क्रिस्टलीय रूप में प्राप्त करना ही अत्यन्त कठिन है तथा उसे क्रिस्टलीय रूप में परिवर्तित करना बहुत ही महंगा है। इसलिए सौर सेलों का मूल्य अधिक होता है।
- अब अक्रिस्टलीय सिलिकन का उपयोग कर सौर सेल निर्मित की जा रही है।
- इन सेलों का मूल्य भी कम होता है तथा इनका स्थलीय उपयोग किया जा रहा है।
- कैल्कुलेटर एवं घड़ियों में अक्रिस्टलीय सेलों का उपयोग किया जा रहा है।
- सौर सेल विद्युत का संग्रह नहीं करता, इसलिए स्टोरेज बैटरी में विद्युत का संचय कर लिया जाता है।
- संचित विद्युत का उपयोग रात्रिकाल या दिन में बादल रहने पर किया जाता है।
- हमारे देश में दूर-दराज के क्षेत्रों के लिए सौर सेलों का काफी उपयोग रहेगा।
- सौर सेलों एवं बैटरी के माध्यम से सिंचाई, पेयजल, घरेलू एवं मार्गों पर प्रकाश तथा लघु उद्योगों को संचालित किया जा सकता है।

- भारत सरकार का अपरम्परागत स्रोत विभाग सौर प्रकाश वोल्टीय युक्तियों के विकास हेतु प्रयास कर रहा है।
- राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली, सेन्ट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत हेवी इलेक्ट्रॉनिक्स डेवलपमेण्ट्स भी सौर प्रकार वोल्टीय विधियों का विकास कर रहे हैं।
- यहाँ कुछ महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सोलर फोटो वोल्टाइक संयंत्रों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है:-

1. सोलर पम्प

- जिन क्षेत्रों में विद्युत उत्पादन या ऊर्जा के अन्य साधनों का पहुँचना कठिन है, वहाँ सोलर पम्प बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।
- इनसे पेयजल एवं दो-ढाई एकड़ जमीन की सिंचाई भी सम्भव है।
- सोलर पम्प में एक फोटोवोल्टाइक पैनल होता है।
- इस पैनल से डी.सी. विद्युत उत्पादित होती है।
- विद्युत से मोटर पम्प चलाया जाता है जो कुँओं से पानी निकालता है।

2. सोलर डी.सी.

- इसमें एक फोटो वोल्टाइक पैनल होता है जो सूर्य की रोशनी से विद्युत पैदा करता है।
- विद्युत उसी बैटरी में संचित हो जाती है। इस बैटरी की सहायता से 24 घंटे टी.वी. प्रसारण देखे जा सकते हैं।

3. स्ट्रीट लाइटिंग

- इस संयंत्र से रात में प्रकाश उत्पन्न किया जाता है।
- इसमें फोटो वोल्टाइक पैनल लगा रहता है जो सूर्य के प्रकाश से विद्युत बनाता है।
- यह विद्युत पैनल के साथ लगी बैटरी में संचित हो जाता है।
- सूर्य का प्रकाश कम होते ही इस यंत्र में लगी 200 वाट की ट्यूब लाइट स्वयं ही जल उठती है।

गोबरधन योजना

पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय ने गोबर (गैल्वनाइजिंग आर्गेनिक बायो-एग्रो रिसोर्सेज) - धन योजना शुरू की है। इस योजना को स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के हिस्से के रूप में कार्यान्वित किया जा रहा है।

स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) में स्वच्छ गाँव बनाने के लिए दो मुख्य घटक शामिल हैं - खुले में शौच मुक्त (ओडीएफ) गाँव बनाना और गाँवों में ठोस और तरल कचरे का प्रबंधन करना। 3.5 लाख से अधिक गांवों, 374 जिलों और 16 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को ओडीएफ घोषित किए जाने के साथ, स्टेज ओडीएफ-प्लस गतिविधियों के लिए निर्धारित है, जिसमें ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन (एसएलडब्ल्यूएम) बढ़ाने के उपाय भी शामिल हैं। गोबर्धन योजना, गांवों को स्वच्छ रखने, ग्रामीण घरों की आय बढ़ाने और मवेशियों के कचरे से ऊर्जा उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करने के साथ, इस ओडीएफ-प्लस रणनीति का एक महत्वपूर्ण तत्व है

लक्ष्य

योजना का उद्देश्य गांव की स्वच्छता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करना और मवेशियों और जैविक कचरे से धन और ऊर्जा उत्पन्न करना है। इस योजना का उद्देश्य नए ग्रामीण आजीविका के अवसर पैदा करना और किसानों और अन्य ग्रामीण लोगों के लिए आय बढ़ाना है।

बायोगैस

- वनस्पति एवं वनस्पति अवशेष, नगरीय कूड़ा करकट, पशु एवं मानव मल, जलीय वनस्पतियों एवं प्राणियों आदि की जैविक क्रियाओं द्वारा उत्पादित सभी ज्वलनशील पदार्थ जैवभार (biomass) कहे जाते हैं।
- हमारे देश में ईंधन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए लगभग 800 लाख मीट्रिक टन से अधिक गोबर को जला दिया जाता है।
- इसके अतिरिक्त लगभग 500 लाख टन घास-फूस, पुआल आदि भी जला दिया जाता है।
- गोबर तथा उपर्युक्त कृषि अवशेषों के दहन से प्रति वर्ष लगभग 2 लाख टन नाइट्रोजन उर्वरक की हानि होती है।
- इस बायोमास को या तो फेंक दिया जाता है जिससे गन्दगी और प्रदूषण बढ़ता है अथवा गलत ढंग से जला कर उष्मा प्राप्त की जाती है।
- इस बायोमास को तकनीकी ढंग से प्रयुक्त करके बायोगैस उत्पन्न की जा सकती है जिससे ताप एवं यांत्रिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।
- इस तकनीक में बायोमास को सड़ाकर उससे मीथेन गैस उत्पन्न की जाती है जो नीली लौ के साथ जलती है।

- इस गैस का उपयोग भोजन बनाने, बल्ब जलाने, पम्पिंग सेट चलाने आदि के लिए किया जाता है और गैस निकलने के पश्चात् बचा हुआ पदार्थ कृषि कार्यों में उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।
- यदि इन्हीं पदार्थों का समुचित उपयोग किया जाय और वैज्ञानिक तकनीक प्रयुक्त की जाय तो अनुमानतः 70 घनमीटर मीथेन गैस प्राप्त होगी जो लगभग 16 करोड़ टन लकड़ी के बराबर उष्मा प्रदान करेगी।
- इस प्रकार हमारे देश में विशाल बायोमास का निरन्तर दुरुपयोग हो रहा है।
- बायोमास का समुचित उपयोग कर बायोगैस प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के संयंत्रों का विकास किया गया है:-

गोबर गैस संयंत्र (Dung Gas Plant)

- इस संयंत्र से मीथेन गैस प्राप्त करने का प्रमुख साधन गोबर है।
- हमारे देश में प्रति वर्ष लगभग 3065 लाख मीट्रिक टन पशु गोबर होता है जो 18.84 लाख घनमीटर मीथेन उत्पादन के लिए पर्याप्त है।
- गैस बने के बाद बचा पदार्थ कम्पोस्ट या अन्य खादों की तुलना में कहीं अच्छे उर्वरक के रूप में कृषि में प्रयुक्त किया जा सकता है।
- संयंत्र द्वारा उत्पादित गैस को भोजन पकाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, साथ ही इसे विद्युत शक्ति के रूप में भी परिवर्तित किया जाता है जिससे सिंचाई एवं कृषि कार्य किये जा सकते हैं।

बायो गैस संयंत्र (Bio Gas Plant)

- आजकल गोबर गैस संयंत्रों के स्थान पर बायोगैस संयंत्रों का प्रचलन अधिक बढ़ा है क्योंकि इसमें गोबर के साथ-साथ मानव मल-मूत्र तथा अन्य वनस्पति अवशेषों का उपयोग भी मीथेन की प्राप्ति के लिए किया जाता है।
- वनस्पतिक अवशेषों में धान की भूसी, पुआल, मूँगफली के छिलके, गन्ने की खोई, पटसन के डुंडे, केले के छिलके तथा तने, नारियल-अवशेष, कपास के डंठल, मक्के का मध्यदंड, खर पतवार आदि का उपयोग किया जा सकता है।
- बायोगैस संयंत्र में नीलहरित शैवाल, जलकुम्भी तथा समुद्री शैवाल का भी उपयोग किया जा सकता है।

- नीलहरित शैवालों को नगरीय मल-जल युक्त तालाबों में उगाया जा सकता है।
- ऐसे जल में ये शैवाल अत्यन्त तेजी से बढ़ते हैं, साथ ही ये जल को शुद्ध भी करते हैं।
- बायोगैस उत्पादन के लिए जलकुम्भी अत्यन्त उपयोगी है।
- यह मीथेन का बड़ा भंडार है, इसकी वृद्धि अत्यन्त तीव्र गति से होती है और यह जल को शुद्ध करती है इसलिए इसे भी नगरीय मल-जल युक्त तालाबों में उगाना उपयोगी होगा।
- जलकुम्भी के पौधे मात्र आठ महीनों में 10 से बढ़कर 6 लाख हो जाते हैं।
- सूखी जलकुम्भी के प्रति किलोग्राम से 374 लीटर बायोगैस प्राप्त की जा सकती है।
- समुद्री शैवालों की खेती करके भी बायोगैस प्राप्त की जा सकती है।
- बायोगैस साफ-सुथरा ईंधन है जो अन्य दहनशील ऊर्जा स्रोतों की तुलना में कम प्रदूषण पैदा करता है। इसका भंडारण और परिवहन आसान होता है।

जल शक्ति

- जल के वेग को नियन्त्रित करके उसकी शक्ति का उपयोग विद्युत ऊर्जा रूपान्तरण के लिए किया जाता है।
- जब पर्वतीय क्षेत्रों में बाँधों का निर्माण करके प्रवाहमान नदियों, झरनों आदि का जल रोक दिया जाता है तो वहाँ जल का विशाल भंडार संचित हो जाता है।
- ऊँचे स्थान से गिरने वाले जल को बाँधों की तलहटी में स्थित विद्युत उत्पादन संयंत्र (टर्बाइन्स) की सहायता से विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित किया जाता है।
- विश्व की कुल विद्युत ऊर्जा में उत्पादन का लगभग 25% हिस्सा जलशक्ति द्वारा उत्पादित किया जाता है।
- ताप शक्ति संयंत्रों (Thermal Power Plants) से उत्पन्न विद्युत ऊर्जा की तुलना में जल शक्ति (Hydro Power) से उत्पन्न विद्युत काफी सस्ती होती है।
- यद्यपि जल के वेग को रोककर बाँध निर्माण से कई पारिस्थितिक समस्याएँ, जैसे जल जीवों और वनस्पतियों के आवास का जल में विलीन हो जाना, आदि, आती हैं किन्तु ऊर्जा की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए जल शक्ति को वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त किया जाना समीचीन है।

पवन ऊर्जा

- वायुमंडल में वायु का प्रवाह एक प्राकृतिक घटना है।
- बहने वाली वायु में वेग होता है जो समय एवं स्थान के अनुसार कम या अधिक होता रहता है।
- प्राचीन काल में वायुवेग का उपयोग नाविक अपनी नौकाओं में पाल लगाकर नाव की बढ़ाने के लिए, तथा कृषक भूसे को अनाज के दानों से अलग करने के लिए करते थे।
- वायु वेग का यह उपयोग अब अत्यन्त सीमित अथवा विलुप्त हो चुका है।
- पवन वेग से ऊर्जा देने वाली युक्तियाँ केवल उन्हीं स्थानों पर प्रयुक्त की जा सकती हैं जहाँ वायु का प्रवाह निरन्तर और तीव्र हो। ऐसा द्वीपों, तटीय क्षेत्रों तथा पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से संभव है।
- पवन वेग से ऊर्जा प्राप्त करने का सबसे प्रभावी साधन है-पवन चक्की।
- इसमें भूमि में एक लगभग 6 मीटर का स्तम्भ गड़ा होता है जिसके ऊपरी भाग में पंखे लगे होते हैं।
- वायु वेग के कारण पंखे घूमते हैं।
- पंखे घूमने के साथ-साथ उससे जुड़े पम्पिंग पिस्टन एवं सिलिन्डर कार्य करने लगते हैं, जिनसे विद्युत उत्पादन होता है। इस विद्युत से स्थानीय लघु उद्योग एवं अन्य कार्य किए जा सकते हैं।
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पवन चक्कियाँ सस्ते एवं अपारम्परिक (वैकल्पिक) ऊर्जा स्रोतों के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय हो रही हैं।
- इसके कई लाभ हैं-जैसे, रख-रखाव पर अत्यन्त कम खर्च आना, ऊर्जा रूपान्तरण के साधन का सरल होना, ईंधन खर्च अत्यन्त कम आना, प्रदूषण मुक्त होना और सबसे बढ़कर ये चक्कियाँ धरातल पर उपलब्ध रहती हैं।
- भारत में अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ पवन चक्कियों का प्रयोग पानी पम्प कर सिंचाई करने अथवा विद्युत उत्पन्न करने में किया जा रहा है।
- ये स्थान हैं तटीय तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और कुछ पहाड़ी क्षेत्र।
- अनेक संस्थानों ने ऐसी पवनचक्कियों का निर्माण किया है जो मात्र 10 किलोमीटर प्रतिघंटा के वेग से चलनेवाली पवन गति पर भी कार्य कर रही हैं।

- इनका उपयोग वृहद् क्षेत्रों में पानी पम्प करने तथा विद्युत उत्पादन में किया जा सकता है।
- उत्तर प्रदेश में अनेक क्षेत्रों में पवनचक्कियों से वृहद् पैमाने पर सिंचाई का कार्य किया जा रहा है।
- चूँकि ग्रीष्म ऋतु में देश के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा पूरे उत्तर प्रदेश में पवन गति सबसे मंद होती है, अतः धीमी गति से चलनेवाले पवनचक्की का विकास लाभकारी सिद्ध हुआ है।
- अधिक ऊर्जा प्राप्त करने के लिए एक साथ कई पवन चक्कियों की स्थापना भी सम्भव है।
- हाइड्रोजन आयन और मुक्त इलेक्ट्रॉनों के संयोग से हाइड्रोजन अणु बनते हैं। इनके निर्माण में हाइड्रोजिनेट नामक एन्जाइम की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आणविक हाइड्रोजन जीवित पौधों से प्राप्त की जा सकती है।
- वर्तमान में हाइड्रोजन प्राप्त करने का सबसे बड़ा प्राकृतिक स्रोत मीथेन गैस है।
- जल के अपघटन से भी हाइड्रोजन प्राप्त की जा सकती है किन्तु इस अपघटन के लिए विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी।
- हाइड्रोजन की प्राप्ति रूद्धी कागज तथा लकड़ी से भी की जा सकती है।

ज्वारीय ऊर्जा

- ज्वारीय ऊर्जा समुद्र से प्राप्त एक अन्य प्रकार की ऊर्जा है जिसमें समुद्री जल स्तर के उतार-चढ़ाव (लहरों) के उच्चतम व निम्नतम ज्वार बिन्दु के मध्य जल स्तर के अन्तर को विद्युत उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है।
- ज्वार चालित स्टेशनों की निर्माण लागत ताप विद्युत स्टेशन की अपेक्षा दोगुनी होती है।
- इसकी एक अन्य बड़ी कमी यह है कि ज्वार के आने पर ही विद्युत उत्पादन किया जा सकता है।
- भारत की तट रेखा 61 सौ किलोमिटर लम्बी है, किन्तु बहुत कम ऐसे स्थान हैं जहाँ ज्वार इतनी होती हो कि उससे ऊर्जा उत्पन्न किया जा सके।
- यह अनुमान लगाया जाता है कि काम्बे की खाड़ी तथा कच्छ की खाड़ी से विद्युत उत्पादन किया जा सकता है।
- एक अन्य सम्भावित स्थान सुन्दरवन भी है जो पश्चिम बंगाल में है।
- ज्वार द्वारा उत्पादित विद्युत अत्यन्त अल्प होगी और इसका स्थानीय उपयोग ही हो सकता है।
- हाइड्रोजन आयन और मुक्त इलेक्ट्रॉनों के संयोग से हाइड्रोजन अणु बनते हैं। इनके निर्माण में हाइड्रोजिनेट नामक एन्जाइम की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आणविक हाइड्रोजन जीवित पौधों से प्राप्त की जा सकती है।
- वर्तमान में हाइड्रोजन प्राप्त करने का सबसे बड़ा प्राकृतिक स्रोत मीथेन गैस है।
- जल के अपघटन से भी हाइड्रोजन प्राप्त की जा सकती है किन्तु इस अपघटन के लिए विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी।
- हाइड्रोजन की प्राप्ति रूद्धी कागज तथा लकड़ी से भी की जा सकती है।
- ऊर्जा के इस स्रोत के उपयोग से हम नए ऊर्जा युग में पहुँच जाएंगे।
- यह सस्ती, नव्यकरणीय एवं प्रदूषण मुक्त होगी।
- रेगिस्तानों, अनुपयोगी जलाशयों तथा समुद्रों का सार्थक उपयोग होने लगेगा और खेतों को जैविक उर्वरक प्राप्त होने लगेंगे।
- हाइड्रोजन को ईंधन के रूप में प्रयुक्त करने का सबसे बड़ा लाभ पर्यावरण में बढ़ती हुई कार्बनडाई-ऑक्साइड की मात्रा को रोकने में होगा, क्योंकि जब हाइड्रोजन का दहन होगा तो केवल उष्मा और पानी ही निकलेगा।
- हाइड्रोजन में ऊर्जा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

भू-तापीय ऊर्जा

- तप्त जल कुण्ड या भाप अथवा गर्म झरनों जैसे ऊपर की तरफ प्रवाहित होने वाले तप्त भूगर्भ जल का उपयोग टर्बाइन चलाने एवं भू-तापीय शक्ति संयंत्र में विद्युत उत्पादन के लिए किया जा सकता है।
- भू-तापीय ऊर्जा का सम्बन्ध पृथ्वी के धरातल की उष्मा की मात्रा से है, जो वृहद् मात्रा में ज्वालामुखी के रूप में उपलब्ध है।
- विभिन्न अध्ययनों के अनुसार भूतापीय ऊर्जा का उपयोग जम्मू व कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में गर्म करने के लिए किया जा सकता है।
- लद्दाख में प्यूगा नामक स्थान पर एक प्रायोगिक परीक्षण वृत्त (Test Ring) की स्थापना भू-तापीय अंतराल को गर्म करने की जाँच करने के लिए की गई है।
- वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में हाइड्रोजन वनस्पतियों से प्राप्त की जा सकती है।
- वनस्पतियों में प्रकाश संश्लेषण के समय पौधे ऊर्जा को ग्रहण करते हैं और अपने अन्दर विद्यमान जल को आविक ऑक्सीजन, हाइड्रोजन आयन तथा मुक्त इलेक्ट्रॉनों में विखण्डित कर देते हैं।

हाइड्रोजन

- स्पष्ट है कि तेजी से समाप्त हो रहे ऊर्जा के संसाधनों की समस्या को विज्ञान एवं तकनीक के उचित प्रयोग से हल किया जा सकता है।

नोट: सन् 1950 के दशक में जलाने की लकड़ी का गम्भीर-संकट खड़ा हो गया था, जिसके फलस्वरूप लोगों ने कोयले का उपयोग वैकल्पिक ईंधन के तौर पर करना शुरू कर दिया।

इसके फलस्वरूप अनेक तकनीकी विकास परिलक्षित हुए, जिससे औद्योगिक क्रांति घटित हुई और आज एक बार फिर सम्पूर्ण विश्व ऊर्जा संकट के दौर से गुजर रहा है।

एल्कोहल

- द्रव ईंधन के रूप में प्राप्त अल्कोहल का उपयोग वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में किया जा सकता है।
- स्टार्च से किण्वन प्रक्रिया द्वारा एल्कोहल तैयार किया जाता है।
- औद्योगिक स्तर पर एल्कोहल उत्पादन के लिए तीन फसलें महत्वपूर्ण हैं-गन्, चुकन्दर और कसावा। गन् और चुकन्दर चीनी उद्योग के लिए महत्वपूर्ण हैं।
- इनकी सिंचाई और देखरेख की काफी जरूरत होती है।
- कसावा ऐसी वनस्पति है जो कम उर्वर-भूमि में भी उग सकती है।
- मौसमी प्रतिकूलताओं को सहने की भी इसमें शक्ति होती है।
- इसे सुखाकर लम्बे समय तक रखा जा सकता है।
- इसके शुष्क भाग में 90% स्टार्च होता है।
- एक टन कसावा से लगभग 150 लीटर एल्कोहल प्राप्त किया जा सकता है।
- चीनी उद्योग के शीरे तथा बेकार पदार्थों जैसे लकड़ी का बुरादा, आलू जैसी स्टार्चयुक्त फसलें आदि से भी एल्कोहल प्राप्त किया जा सकता है।
- चीनी उद्योग के अपशिष्ट से बनी एल्कोहल अत्यन्त ही सस्ती होती है।
- ब्राजील में गन्ने से प्राप्त एल्कोहल को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

- वहाँ पेट्रोल के साथ एल्कोहल मिलाकर मोटर वाहनों को चलाया जाता है।
- इस मिश्रण का अनुपात 1:3 (एक भाग इथेनाल और तीन भाग पेट्रोल) रखने से ईंधन की खपत 5% कम हुई और कार्बन मोनो-ऑक्साइड भी 30%-40% कम निकली।
- इस प्रकार यह सस्ता और कम प्रदूषण उत्पन्न करने वाला ऊर्जा स्रोत है।

इथेनाल सम्मिश्रण कार्यक्रम

इथेनाल, C_2H_5OH के रासायनिक सूत्र वाले एक निर्जल एथिल अल्कोहल का उत्पादन गन्ना, मक्का, गेहूं आदि से किया जा सकता है, जिसमें उच्च स्टार्च की मात्रा होती है। भारत में, इथेनाल का उत्पादन मुख्य रूप से किण्वन प्रक्रिया द्वारा गन्ना गुड़ से किया जाता है। विभिन्न मिश्रणों को बनाने के लिए इथेनाल को गैसोलीन के साथ मिलाया जा सकता है। चूंकि इथेनाल अणु में आक्सीजन होता है, यह इंजन को ईंधन को पूरी तरह से दहन करने की अनुमति देता है, जिसके परिणामस्वरूप कम उत्सर्जन होता है और जिससे पर्यावरण प्रदूषण की घटना कम होती है। चूंकि इथेनाल का उत्पादन पौधों से होता है जो सूर्य की शक्ति का दोहन करते हैं, इसलिए इथेनाल को अक्षय ईंधन के रूप में भी माना जाता है।

इथेनाल मिश्रित मिश्रित पेट्रोल (EBP) कार्यक्रम जनवरी, 2003 में शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम में वैकल्पिक और पर्यावरण के अनुकूल ईंधन के उपयोग को बढ़ावा देने और ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए आयात निर्भरता को कम करने की मांग की गई थी।

ग्रामीणी कार्यक्रम का कार्यान्वयन

2001 के दौरान, इथेनाल मिश्रित पेट्रोल पर पायलट परियोजनाएं 3 स्थानों पर शुरू हुईं अर्थात् मिराज, मनमाड (महाराष्ट्र) और उत्तर प्रदेश में आंवला / बरेली। भारत सरकार ने जनवरी, 2003 में 5% इथेनाल मिश्रित पेट्रोल की आपूर्ति के लिए इथेनाल मिश्रित पेट्रोल (EBP) कार्यक्रम शुरू करने का निर्णय लिया। इसके बाद, जनवरी, 2003 में 9 राज्यों यानी महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और 4 केंद्र शासित प्रदेशों में इथेनाल मिश्रित मिश्रित पेट्रोल कार्यक्रम शुरू किया गया।

पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय (MoP & NG) ने 20 सितंबर, 2006 की अपनी अधिसूचना को रद्द कर दिया, तेल विपणन कंपनियों (ओएमसी) को अधिसूचित 20 राज्यों और 4 में भारतीय मानक ब्यूरो के विनिर्देशों के अनुसार वाणिज्यिक व्यवहार्यता के लिए 5% इथेनॉल मिश्रित पेट्रोल बेचने के लिए निर्देशित किया। 1 नवंबर, 2006 से प्रभावी संघ राज्य क्षेत्र। अतिरिक्त 10 राज्यों में दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, चंडीगढ़, केरल, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, बिहार और झारखंड शामिल हैं। हालांकि, कार्यक्रम के तहत उत्तर - पूर्वी राज्यों, जम्मू और कश्मीर, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और लक्षद्वीप द्वीप समूह को कवर नहीं किया गया है। वर्तमान में, तेलंगाना राज्य सहित, EBP कार्यक्रम 21 राज्यों और 4 केंद्र शासित प्रदेशों में लागू किया जा रहा है।

लहरें या सागरीय तरंगों से ऊर्जा

- वायु प्रवाह से उत्पन्न समुद्री तरंगों में टर्बाइन चलाने एवं विद्युत उत्पादन की क्षमता होती है।
- समुद्र तट के एक किमी. क्षेत्र पर थपड़े मारती लहरों से अनुमानित 40 मेगावाट विद्युत उत्पन्न की जा सकती है।
- समुद्री लहरों का दोहन करने की दिशा में भारत में अनेक महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं।
- मद्रास स्थित पोर्ट ट्रस्ट इंजीनियर ने एक युक्ति का विकास किया था, जिसके द्वारा लहरों से विद्युत उत्पन्न की जाती है।
- संप्रति लहरचालित जेनरेटर (W.P.G.) काफी कम क्षमता के हैं और उनके लगभग 35 वाट विद्युत ही प्राप्त की जा सकती है।

चुम्बकीय द्रवगतिकी

- इस तकनीक के विकसित करने का श्रेय सोवियत संघ को है, जिसका प्रयोग विद्युत उत्पन्न करने में किया जाता है।
- इसके अन्तर्गत विशालकाय 500 टन के चुम्बकों को लिया जाता है तथा नीलजल (Blue Water) में इसका प्रयोग किया जाता है।
- नीलजल गैस व कार्बन मोनोआक्साइड का मिश्रण है, जिसे उद्दीप्त कोयले से 12 सेन्टीग्रेड तापक्रम पर तैयार किया जाता है।

- नीलजल गैस का उपयोग ईंधन के रूप में हाईड्रोकार्बन तथा ऑक्सीजन युक्त यौगिकों के संश्लेषण में किया जाता है।

महासागरीय ऊर्जा

- धरातल तथा गहरे समुद्र के तापक्रम के अन्तर से ऊर्जा उत्पन्न करने का विचार सर्वप्रथम फ्रांस के एक भौतिकशास्त्री को आया। उन्होंने समुद्री उष्मा का रूपान्तरण विद्युत ऊर्जा के रूप में करने सम्बन्धी कार्य किया।
- उनकी इस तकनीक में गैस टर्बाइन को गर्म तथा ठंडे टर्मिनल की भाँति प्रयुक्त किया जाता है जिससे विद्युत उत्पन्न होती है।
- हमारे देश में अभी इस वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत का विकास नहीं हुआ है।

ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण

- ऊर्जा संसाधनों का उपयोग तकनीकी विकास के साथ-साथ परिवर्तित होता गया है।
- जीवाश्म ईंधन स्रोतों के अंधाधुंध उपयोग से हम इनके भंडारों को रिक्त करते चले जा रहे हैं।
- ईंधन के रूप में लकड़ी प्रयुक्त करने के लिए वृक्षों की कटाई लम्बे समय से जारी है।
- वृक्षों के कटने से वन संकुचित हुए हैं, बागों का क्षेत्रफल कम हुआ है तथा वृक्षों के अभाव में सूखा, बाढ़, भूस्खलन, मृदाक्षरण, मरुस्थल विस्तार आदि पर्यावरणीय समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं, ऊर्जा का प्रधान स्रोत पर्यावरण ही है अतः हमें ऊर्जा के उपयोग को इस प्रकार सुनिश्चित करना होगा ताकि पर्यावरण सुरक्षित रहे तथा ऊर्जा के भंडार आगामी पीढ़ियों के लिए भी उपलब्ध रहें।
- ऊर्जा के संरक्षण में पहला कदम है ऊर्जा की बचत करना।
- ऊर्जा के अपव्यय को रोककर हम जितनी ऊर्जा बचाते हैं उसकी शक्ति, नवीन उत्पादित यूनिट की शक्ति की सवा गुनी मानी जाती है।
- अतः यथा सम्भव ऊर्जा को बचाने अर्थात् अपव्यय रोकने का प्रयास करना चाहिए। ऊर्जा संरक्षण सम्बन्धी प्रयोग दो स्तरों पर किए जा सकते हैं:-
 1. वैयक्तिक स्तर पर।
 2. राष्ट्रीय स्तर पर।

1. वैयक्तिक स्तर पर: ऊर्जा संरक्षण हेतु हम निम्नांकित उपाय कर सकते हैं:-

- अच्छे एवं मानक स्तर वाले उपकरणों का उपयोग किया जाय।
- प्रकाश के लिए उच्च गुणवत्ता वाले लैम्पों का उपयोग किया जाय। यथासम्भव ट्यूब लाइट का उपयोग किया जाय।
- दिन में विद्युत प्रकाश का उपयोग न करके सूर्य के प्रकाश का उपयोग किया जाय।
- रसोई गैस का उपयोग आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए। चूल्हों को बेकार में जलता नहीं छोड़ना चाहिए।
- आवश्यकता न होने पर विद्युत उपकरणों (पंखे, लाइट आदि) को बन्द रखना चाहिए।
- मोटर-वाहन के इंजन को सदैव दुरुस्त रखना चाहिए अन्यथा पेट्रोल भी अधिक व्यय होगा।

2. राष्ट्रीय स्तर पर: ऊर्जा संरक्षण हेतु निम्नांकित उपाय किए जा सकते हैं:-

- कोयले का भंडार सीमित है अतः इसे अत्यन्त सावधानीपूर्वक उपयोग करने की आवश्यकता है। वैकल्पिक ऊर्जा की व्यवस्था के लिए तापविद्युत गृह लगाए जाने चाहिए।
- पेट्रोलियम पदार्थों के भंडार समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। ऐसी दशा में पेट्रोल के साथ एल्कोहल मिश्रित करके वाहनों को चलाने की व्यवस्था करना आवश्यक है। इसकी कीमत भी पेट्रोल से कम होगी, पेट्रोल की बचत भी होगी और वायु प्रदूषण 35% से 60% तक कम हो जाएगा।
- पारिस्थितिकीय तत्वों का ध्यान रखते हुए जल विद्युत विकास की दिशा में विद्युत परियोजनाएँ संचालित की जानी चाहिए।
- देश में उपलब्ध थोरियम का उपयोग नाभिकीय ऊर्जा विकास की दिशा में किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में प्यूजन विधि का विकास करना चाहिए।
- ऊर्जा के वानस्पतिक स्रोतों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। वनारोपण, पेट्रोलियम वृक्षों को लगाना तथा एल्कोहल उत्पादन की दिशा में विशेष प्रयास करना चाहिए।

- बायोगैस संयंत्रों के उपयोग को लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए।
- सौर ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए।
- ईंधन की बचत करने वाली तकनीकी का विकास करना चाहिए।
- पवन ऊर्जा से चलने वाली पवन चक्कियों के स्वरूप में परिमार्जन कर उनका उपयोग अधिक व्यापक बनाना चाहिए।
- ऊर्जा संरक्षण की विधियों से जन साधारण को परिचित कराया जाना चाहिए।

भू-संसाधन

- हमारे पूरे भू-मंडल का लगभग एक चौथाई भाग स्थल मंडल है जो विविध प्रकार के प्राकृतिक वनों, घास के मैदानों और नम भूमि से आच्छादित है। घने वृक्षों से ढँकी हुई निचली भूमि नमभूमि (wet land) कहलाती है।
- यह नम भूमि जल तथा स्थल को एक-दूसरे से जोड़ती है। पृथ्वी की ऊपरी सतह मृदा (मिट्टी) है जो क्षरण के फलस्वरूप बनती है और पेड़-पौधों को विकसित होने में मदद करती है।

मृदा

- मानव का अस्तित्व भूमि की ऊपरी 15 सेमी. गहराई वाली मिट्टी की परत तथा उस पर होने वाली वर्षा की देन है।
- प्रकृति की जीवन्तता मृदा के ही माध्यम से प्रकट होती है।
- इसमें उर्वरा शक्ति होती है जो वनस्पतियों के विकास के लिए आवश्यक है।
- मृदा की रचना कार्बनिक पदार्थों, अकार्बनिक कणों, जल, वायु तथा विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओं से हुई है।
- मृदा की परतों के निर्मित होने में सैकड़ों वर्षों का समय लगता है।
- मृदा विभिन्न आकारों वाले स्वतन्त्र कणों से निर्मित रहती है।
- कणों के आकार के आधार पर मृदा के कई प्रकार हैं:-
 - चिकनी मिट्टी (clay)
 - गाद (silt)
 - महीन बालू (fine sand)
 - मोटी बालू (coarse Sand)

- महीन कंकड़ी (fine gravel)
- कंकड़ (gravel)
- मृदा की उर्वरा शक्ति के कारण मानव वर्ग ने उसे अपने भरण-पोषण के लिए आधार बनाया।
- मृदा का अनुकूलतम उपयोग मानव ने मैदानी क्षेत्रों में किया क्योंकि इन क्षेत्रों में मानवीय क्रिया-कलाप सदैव सुगम और सहज रहे हैं।
- धरातल समतल होने से कृषि कार्य में सुगमता, यातायात की सुगमता, नदियों के जल की सहज उपलब्धता आदि के कारण अधिकांश संस्कृतियाँ नदियों के किनारे मैदानी क्षेत्रों के विकसित हुई हैं, किन्तु मानवीय क्रिया कलाप सदा ही इस प्राकृतिक संसाधन को नुकसान पहुँचाते रहे हैं जिससे इसकी गुणवत्ता में भारी गिरावट आई है।

मृदा अवनति (Soil Degradation)

- मृदा के गहनतम उपयोग के कारण इसकी उर्वरता और जल दोनों की कमी होती जा रही है और मृदा के स्तर में गिरावट बढ़ती जा रही है।
- लगातार फसल बोने और काटने से तथा पोषक तत्वों की पूर्ति न करने से मृदाओं के पोषक तत्वों का भंडार तीव्र गति से समाप्ति की बढ़ रहा है। यंत्रों द्वारा कृषि करने का भी मिट्टी पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।
- ट्रैक्टर से खेत जोतने से मिट्टी की गुणकारी और उपजाऊ परत नीचे चली जाती है।
- एक ही प्रकार की फसल बोने से भी मिट्टी के विशेष उत्पादक तत्व (नाइट्रोजन आदि) समाप्त प्राय हो रहे हैं।
- सिंचाई जल के अन्धाधुन्ध उपयोग के कारण भी मिट्टी के गुणों में अवनति आ रही है और भूमि लवणीय अर्थात् ऊसर में बदलती जा रही है।
- भूमि का कूड़ेदान के रूप में उपयोग भी मृदा की गुणवत्ता में अवनति का कारण है।
- मृदा का गैर कृषि कार्यों जैसे ईंट निर्माण, आदि में उपयोग भी उसकी उत्पादकता को समाप्त कर देता है।
- मरुस्थलीकरण के कारण भी मिट्टी का नाश हो जाता है।
- मृदा की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में कमी का सबसे बड़ा कारण इसका क्षरण है, जिसके कारण यह आधारभूत संसाधन हासोन्मुखी हो जाता है।
- ऐतिहासिक काल से मिट्टी का उपयोग मानव ने स्थायी बस्तियों के निर्माण के साथ कृषि कार्य के लिए किया।

- कालान्तर में तकनीकी विकास के साथ सिंचाई की सुविधा से मनचाही फसलों का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया।
- पशु शक्ति का उपयोग करके फसलोत्पादन में उसने भी अधिक दक्षता प्राप्त कर ली। औद्योगिक क्रान्ति के बाद इस कृषि पद्धति में भारी परिवर्तन आया और कृषि का व्यापारीकरण प्रारम्भ हो गया।
- उर्वरकों, कीटनाशकों तथा कृषि संयंत्रों का भरपूर उपयोग प्रारम्भ हो गया।
- फलतः मिट्टी का गहन शोषण प्रारम्भ हो गया और उसकी शक्ति में ह्रास की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगी।
- इस ह्रास में जैविक तत्वों की कमी, खनिजों की कमी, लवणता एवं क्षारीयता में वृद्धि, भूक्षरण आदि समस्याएँ प्रखर रूप में सामने आई हैं।

मानव जनित भूस्खलन (Anthropogenic Landslides)

- भूस्खलन एक प्रकार का प्राकृतिक उपद्रव है जिसमें प्राकृतिक चट्टानों, मिट्टी, कृत्रिम ढंग से भरी गई मिट्टी एवं/अथवा इन सबका मिश्रण ढलानों पर नीचे की तरफ अथवा बाहर की तरफ दूर जा गिरता है।
- मृदा की शक्ति समाप्त हो जाने के बाद भूस्खलन प्रारम्भ हो जाता है।
- पारिभाषिक रूप से चट्टानी मलवे के बहाव के सहारे नीचे की ओर खिसकना भूस्खलन कहलाता है।
- भूस्खलन में स्थलीय भाग का छोटा टुकड़ा गिरता, सरकता या बहता है अथवा से सभी गतियाँ एक साथ हो सकती हैं।
- अधिक वर्षा एवं तीव्र ढलान वाली कमजोर चट्टानों के क्षेत्र में भूस्खलन अधिक होता है।
- भूस्खलन के प्राकृतिक कारण हैं- भू आकृतियाँ और उनकी स्थिति, जलवायु, शैलीय संरचना, क्षरण, भूकम्पीय संवेदनशीलता आदि।
- इन कारकों के अतिरिक्त कुछ कृत्रिम या मानवजनित कारक भी हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भूस्खलन पैदा कर सकते हैं।
- वन संसाधनों का अत्यधिक दोहन, पशुओं द्वारा घास के मैदानों का अत्यधिक चारण, गहन कृषि, अनियोजित सिंचाई, अवैज्ञानिक एवं अनियोजित जल निकास व्यवस्था,

निम्न गुणवत्ता वाली कमजोर सड़कों का निर्माण, बाँधों का निर्माण, पर्वतीय क्षेत्रों में यातायात मार्ग निर्माण आदि ऐसे मानवजनित कार्य हैं जो भूस्खलन उत्पन्न करते हैं।

- वनों की अंधाधुंध कटाई, चाहे वह कृषि के लिए हो अथवा आवास के लिए, भूमि की गुणवत्ता को नष्ट करती है।
- पेड़ पौधे धरती को अपनी जड़ों से जकड़े रहते हैं और सामान्यतः वर्षा में उस मिट्टी को बहने नहीं देते किन्तु पेड़-पौधों के अभाव में मिट्टी की ऊपरी परतें विनष्ट हो जाती हैं।
- उनमें पोषक तत्वों का अभाव हो जाता है। शक्तिहीन मृदा भूस्खलन उत्पन्न करते हैं।
- वनों की अंधाधुंध कटाई, चाहे वह कृषि के लिए हो अथवा आवास के लिए, भूमि की गुणवत्ता को नष्ट करती है।
- पेड़ पौधे धरती को अपनी जड़ों से जकड़े रहते हैं और सामान्यतः वर्षा में उस मिट्टी को बहने नहीं देते किन्तु पेड़-पौधों के अभाव में मिट्टी की ऊपरी परतें विनष्ट हो जाती हैं।
- उनमें पोषक तत्वों का अभाव हो जाता है। शक्तिहीन मृदा भूस्खलन को जन्म देती है।
- गहन कृषि अर्थात् लगातार फसलें उपजाते जो से धरती में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।
- साथ ही वैज्ञानिक उपकरणों, यथा ट्रैक्टर आदि से कृषि कार्य करने में धरती की उपजाऊ परत नीचे चली जाती है।
- शक्तिहीन मृदा ऊपर आ जाती है।
- अधिक फसल उत्पादन के लिए किया गया उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग भी मृदा की गुणवत्ता में गिरावट लाता है और उसकी शक्ति को कम करता है।
- सिंचाई की अवैज्ञानिक व्यवस्थाएँ धरती में जल-जमाव तथा क्षरीयता एवं लवणता बढ़ाती हैं जो मृदा को कमजोर करते हैं और भूस्खलन का कारण बनते हैं।
- सड़कों के निर्माण हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में चट्टानों को तोड़ना एवं काटना पड़ता है। सड़क बनाते समय वर्षाकाल में उस पर पड़ने वाली धारा का निकास न होने से पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ की समस्या आ जाती है।
- बाढ़ से मिट्टी सदैव के लिए नष्ट हो जाती है। वर्षाकाल में जलयुक्त अपरदित पदार्थ नीचे की ओर लुढ़कता है। बाढ़ के समय नदियों में तीव्र बहाव के कारण भी भूस्खलन हो जाता है।

- पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण तथा आवास निर्माण के लिए चट्टानों को तोड़ने हेतु डायनामाइट का उपयोग किया जाता है। इससे भी भूस्खलन हो जाता है।
- इस प्रकार अनेक मानवजनित कारक हैं जो भूस्खलन होने का कारण बनते हैं।

मृदा-क्षरण (Soil Erosion)

- मृदा की ऊपरी परत का विस्थापन 'मृदा क्षरण' अथवा 'मृदा अपरदन' कहलाता है। इसमें मिट्टी अपरदित होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती है।
- यह मृदा हास की स्थानान्तरणशील प्रक्रिया है।
- जब जैविकीय तत्वों की कमी तथा संरचनात्मक तत्वों में विघटन के कारण मिट्टी असन्तुलित हो जाती है तो इसका स्थानान्तरण होने लगता है।
- मृदा-क्षरण का मुख्य कारण जल तथा वायु का तीव्र प्रवाह तथा समुद्री जल होता है।
- मृदा-क्षरण के तीन रूप पाए जाते हैं:-
 1. **परत क्षरण**-इस प्रकार का क्षरण उन क्षेत्रों में अधिक होता है जहाँ मानवीय क्रियाकलापों के कारण भूमि से प्राकृतिक वनस्पतियों के आवरण समाप्त हो जाते हैं और मिट्टी में जैव पदार्थों की कमी हो जाती है।
 - परत क्षरण के कारण मिट्टी की जल अवशोषित करने की क्षमता का हास होता है और उसकी उर्वरक क्षमता घट जाती है।
 2. **सरिता कटाव**-इस प्रकार का क्षरण प्रमुख रूप से ढालू भूमि पर होता है।
 - बहाव वाले जल के द्वारा यह क्षरण होता है। जलधाराओं एवं नहरों के क्षेत्र में यह क्षरण काफी मात्रा में पाया जाता है।
 3. **अवनलिका कटाव**-इस प्रकार का क्षरण तीव्र गति से बहते हुए जल के कारण होता है।
 - इससे चट्टानें भी प्रभावित होती हैं।
 - धरातल असमतल हो जाता है और भूमि का उपयोग अत्यन्त कठिन हो जाता है।
 - मृदा क्षरण द्वारा मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों और पोषक तत्वों का विस्थापन हो जाता है, जिससे मिट्टी की उर्वराशक्ति का हास होता है।

- साथ ही कृषि भूमि की उपजाऊ मिट्टी तेज वर्षा और वायु प्रवाहों के कारण बहकर झरनों और नदियों के माध्यम से समुद्र तक पहुँच जाती है।
- झरनों, झीलों और नदियों में पहुँची यह मिट्टी जल की गुणवत्ता का हास करती हैं, साथ ही जल-जीवों के आवास को क्षतिग्रस्त करती है।

भूमि संरक्षण (Land Conservation)

- भूमि एक ऐसा संसाधन है जिसका विस्तार नहीं किया जा सकता।
- उपलब्ध भूमि से ही बढ़ती हुई जनसंख्या तथा पशुओं के लिए खाद्यान्न, घास, रेशे, ईंधन एवं खनिज पदार्थ आदि प्राप्त किए जा सकते हैं।
- भूमि और मानव का गिरता हुआ अनुपात और भूमि का विविध गैर कृषि कार्यों में बढ़ता उपयोग एक गम्भीर चुनौती बन गया है।
- वास्तव में भूमि उपयोग की दशाएँ पारिस्थितिक एवं पर्यावरणीय तत्वों को प्रभावित करती हैं।
- हरित क्रान्ति, सिंचित क्षेत्रों में विस्तार तथा गहन कृषि के कारण भूमि उपयोग में व्यापक परिवर्तन हुआ है और विभिन्न प्राकृतिक तथा मानवजनित कारणों से भूमि को पर्याप्त क्षति भी पहुँची है।
- अतः आवश्यकता इस बात की है कि भूमि के दुरुपयोग को रोका जाय और उसकी गुणवत्ता को बनाए रखते हुए उसका संरक्षण किया जाय। इस हेतु निम्नांकित सुझाव हैं:-
 - वैज्ञानिक ढंग से वन लगाए जाएँ और इन्हें कटाई से बचाया जाय।
 - कृषि तकनीकों में सुधार किया जाय।
 - बाँधों का निर्माण किया जाय ताकि तीव्र जल प्रवाह मृदा को क्षति न पहुँचा सके।
 - जल निकासी के समुचित साधनों का विकास किया जाय ताकि जल जमाव भूमि की शक्ति का हास न कर सके।
 - नदी घाटी परियोजनाएँ विकसित एवं कार्यान्वित की जाएँ।
 - मरुस्थलों की परिधि पर चौड़ा वनस्पति क्षेत्र बनाया जाय।

मृदा संरक्षण (Soil Conservation)

उपाय:

1. कार्बन खेती (Organic farming)।
 2. फसल चक्रण (Crop rotation)।
 3. संरक्षित जुताई (Conservation tillage)।
 4. परिरेखीय जुताई (Contour ploughing)।
 5. ढलानों पर सीढ़ी एवं पट्टीदार बुआई (Strip cropping terraces)।
- संरक्षित खेती के माध्यम से मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है।
 - इस प्रकार की खेती में फसलों की कटाई के बाद फसलों के कुछ अवशेष मिट्टी में छोड़ दिए जाते हैं जो मिट्टी में कार्बनिक तत्वों, नमी तथा पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि कर देते हैं।
 - क्षरण से प्रभावित मिट्टी का संरक्षण दो चरणों में किया जा सकता है:-
 1. मिट्टी को स्थिरता प्रदान करना।
 2. मिट्टी की उर्वराशक्ति को पुनः स्थापित करना।
 - मिट्टी को स्थिरता प्रदान करना इसलिए आवश्यक है ताकि उसका पुनः क्षरण न हो सके।
 - इस कार्य के लिए खाली भूमि पर ऐसी वनस्पतियों को लगाया जाता है जो विषम परिस्थितियों में भी जीवित रह पाती हैं।
 - इन पौधों द्वारा धरती पर वानस्पतिक आच्छादन (vegetation covers) करके उसे क्षरण से बचाया जा सकता है।
 - वृक्षों को लगाने से भी मिट्टी को स्थिरता मिलती है क्योंकि वृक्षों की जड़ें मिट्टी को मजबूती से जकड़े रहती हैं और सरलता से इसका क्षरण नहीं होने देती।
 - मिट्टी की उर्वराशक्ति के पुनः स्थापित करने के लिए जैविक खादों का उपयोग लाभकारी होता है।
 - कार्बनिक खेती के द्वारा मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की आपूर्ति होती है, जिससे मिट्टी में पोषक तत्व बढ़ते हैं और उसकी उर्वरा शक्ति धीरे-धीरे पुनर्स्थापित होती है।

घासस्थल संरक्षण

- घास स्थल पशुओं के लिए भोजन उपलब्ध कराने वाले प्रमुख स्रोत होते हैं, सूखी घासें ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन तथा आवास निर्माण सामग्री के रूप में प्रयुक्त होती है।

- इस श्रेणी के पौधों की जड़ें बहुशाखाओं वाली होती हैं, जो मिट्टी को मजबूती से जकड़े रहती हैं।
- ये मृदा क्षरण को रोकने में अत्यन्त सहायक हैं।
- किन्तु अति चारण के कारण घास स्थल धीरे-धीरे मरुस्थलों में परिवर्तित होते जा रहे हैं।
- घास स्थलों का संरक्षण भूमि की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।
- घास स्थलों के संरक्षण के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं:-
 - अति चारण पर रोक लगाई जाय।
 - घास स्थलों के विभिन्न अन्तरालों पर क्रमवार चारण की विधि अपनाई जाय। अर्थात् कुछ क्षेत्रों को घासों के उगने के लिए छोड़ा जाय, और पास के क्षेत्रों को चारागाह के रूप में प्रयुक्त किया जाय।
 - घास स्थलों से झाड़ियों और खरपतवारों की सफाई की जाय।
 - घास स्थलों को पानी से होने वाली हानि से बचाया जाय।
 - सूखी तथा आधी सड़ी हुई घास में उपस्थित पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण (recycling) किया जाय। इसके लिए नियन्त्रित दहन विधि-प्रयुक्त की जा सकती है।
 - घास स्थलों में काष्ठ जाति के पौधों को विकसित न होने दिया जाय।
- भवन निर्माण अथवा औद्योगिक कार्यों के लिए नमभूमि को पाटकर उपयोग में लाया जा रहा है।
- कृषि, औद्योगिक कार्य एवं आवास निर्माण आदि के कारण इनका तेजी से हास हो रहा है। इनके संरक्षण हेतु निम्नांकित सुझाव हैं:-
 - सबसे पहले महत्वपूर्ण नमभूमियों को रेखांकित कर दिया जाय।
 - इनमें होने वाले मानवजनित अतिक्रमण को प्रतिबन्धित किया जाय।
 - अपशिष्ट का विसर्जन नमभूमि में न होने दिया जाय।
 - आस-पास के ऊँचे क्षेत्रों को वनों से आच्छादित किया जाय ताकि नमभूमि की मिट्टी एवं पोषक तत्वों का प्रवाह बाहर की ओर न होने पाए।

भूस्खलन विरोधी सुरक्षा

- भूस्खलन के परिणामस्वरूप मिट्टी एवं वनस्पतियाँ अपने प्राकृतिक स्थान से विस्थापित हो जाती हैं।
- मिट्टी और उसके पोषक तत्वों को क्षति पहुँचती है।
- अधिकांश आवास नष्ट हो जाते हैं जिससे जैवविविधता को भी क्षति पहुँचाती है।
- भूस्खलन से पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ की प्रवणता बढ़ गई है।
- यदि चट्टानें अथवा पहाड़ का कोई भाग टूट कर नीचे आता है और नदी के प्रवाह को रोक लेता है तो शीघ्र ही आस-पास के गाँव और शहर जलमग्न हो जाते हैं।
- भूस्खलन की प्रक्रिया से न केवल स्थानीय भूमि की क्षति होती है वरन् स्थानान्तरित क्षेत्र की वनस्पतियाँ भी नष्ट हो जाती है।
- भूस्खलन के भयावह परिणामों को देखते हुए उसे रोकने के सुरक्षात्मक उपाय अवश्य ही अपनाए जाने चाहिए।
- भूस्खलन विरोधी कुछ सुरक्षात्मक उपाय निम्नवत् हैं:-
 - पर्वतीय ढालों पर सड़कों, भवनों अथवा नहरों के निर्माण को प्रतिबन्धित किया जाना चाहिए।
 - डायनामाइट का प्रयोग प्रतिबन्धित होना चाहिए।
 - वृक्षों की कटाई पर रोक लगानी चाहिए।
 - अनियमित ढंग से पशुओं की चराई पर नियन्त्रण लगाना चाहिए।

नमभूमि संरक्षण

- नमभूमि ताजे पानी तथा खारे पानी दोनों के तटीय क्षेत्र में होती है।
- नमभूमि में घास-पात तथा विशेष प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।
- इस प्रकार की भूमि में वृक्ष और झाड़ियाँ भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।
- अधिक मात्रा में जल अवशोषित कर सकने की क्षमता के कारण नमभूमि बाढ़ को भी नियन्त्रित करने में सहायक होती है।
- नमभूमि विभिन्न मानवीय क्रिया-कलापों द्वारा नष्ट होती जा रही है।

- पूर्व निर्मित सड़कों की ढालों पर वनस्पति की पट्टी उगाना चाहिए।
- जल जमाव न हो, इसके लिए धरातल के अनुरूप जल निकासी की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- जहाँ अवनालिकाएँ बन गई हों, वहाँ मिट्टी बाँधने वाली घास तथा पौधे लगाने चाहिए।
- सड़कों तथा ढालों पर तीव्र गति से बढ़ने वाली वनस्पति, विशेषरूप से बारहमासी वनस्पति की झाड़ियाँ लगानी चाहिए।
- इस प्रकार हम सभी प्रकार के संसाधनों का संरक्षण निम्नांकित तीन दृष्टिकोणों से कर सकते हैं:-
 1. न्यायपूर्ण तथा विवेकशील उपयोग एवं वितरण।
 2. क्षयशीलता से बचाव।
 3. क्षयशील संसाधन की पुनर्स्थापना।

ऊर्जा दक्षता

ऊर्जा दक्षता का अर्थ है कि ऊर्जा की मांग में कमी लायी जाये, किन्तु यह कमी विकास को बाधित करके नहीं, बल्कि ऐसे नवीन उपागमों का प्रयोग करके जिनके द्वारा विकास को बिना अवरूद्ध किये ऊर्जा के उपभोग को सीमित किया जा सके। ऊर्जा के विषय में इस तरह की चेतना चार दशक पहले तक नहीं थी। दुनिया में सभी को लग रहा था कि ये स्रोत कभी खत्म नहीं होंगे और न ही कोई इनके निर्बाध आवागमन को रोक सकेगा। किन्तु वर्ष 1973 के ऊर्जा संकट ने सभी को हिलाकर रख दिया और इस ओर सोचने के लिये मजबूर कर दिया।

ऊर्जा दक्षता की आवश्यकता

संसाधन के परम्परागत साधन तेजी से समाप्त हो रहे हैं। ये जितनी तेजी से खत्म हो रहे हैं उतनी ही तीव्रता सम्पूर्ण तकनीकी परिवर्तन में संभव नहीं है क्योंकि अनुसंधान और विकास दीर्घकालिक किया है। इसके साथ ही बेहद खर्चीली भी है जो विकासशील देशों के लिये सम्भव नहीं है। ऊर्जा की मांग अत्यधिक बढ़ रही है। जिस वजह से इसकी कीमत अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में अप्रत्याशित रूप से चढ़ती रहती है। इसके कारण विभिन्न देशों में मुद्रास्फीति की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यह किसी भी देश के विकास के लिये अवरोधक के रूप में कार्य करना है। वैश्विक बाजार में पेट्रोलियम उत्पादों की अधिक कीमत होने की वजह से भारत जैसे विकासशील देशों को

बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है जिसका इनकी अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

आज के समय में वैश्विक ताप वृद्धि एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है इससे निपटने के लिये अनेक प्रकार के सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। इसके साथ ही विभिन्न तरह की योजनाएँ भी अलग-अलग देशों के द्वारा संचालित की जा रही हैं। इन सभी सम्मेलनों और योजनाओं में केन्द्रीय विषय यही है कि किस प्रकार वायुमण्डल को गर्म होने से बचाया जाये। इस प्रश्न का उत्तर बिना ऊर्जा दक्षता को आत्मसात किये नहीं दिया जा सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण गम्भीर समस्या बनता जा रहा है। विशेष रूप से वायु प्रदूषण विगत कई वर्षों से जारी है और अम्ल वर्षा एक सामान्य घटना होती जा रही है। इसके अलावा श्वास संबंधी समस्या भी इनकी वजह से बढ़ती जा रही है। अगर हम अपने आने वाली पीढ़ी को सुन्दर भविष्य देना चाहते हैं और स्वस्थ पर्यावरण में जीना चाहते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य बनता है कि वह इसके लिये प्रयास करें।

इन्हीं सब कारकों ने संयुक्त रूप से इस दिशा में आगे बढ़ने के लिये बाध्य किया, जिसके फलस्वरूप सरकार ने कई योजनाएँ शुरू कीं।

ऊर्जा कुशलता ब्यूरो

- इस ब्यूरो का गठन वर्ष 2001 की ऊर्जा संरक्षण अधिनियम के तहत किया गया है। इसका उद्देश्य ऊर्जा संरक्षण के लिये कार्यक्रम बनाना और लागू करना है।

बचत लैंप योजना

- वर्ष 2008 में यह कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके तहत लोगों को एफोडेबल रेट पर CFL उपलब्ध कराया जाता है। कीमत में कटौती का लक्ष्य क्योटो प्रोटोकॉल के सीडीएम तकनीक के जरिये पूरा किया जायेगा।

मानक एवं लेबलिंग कार्यक्रम

- वर्ष 2006 में शुरू किये गये इस कार्यक्रम का उद्देश्य उपभोक्ता वस्तुओं का मानकीकरण करना है।

कृषि ऊर्जा संरक्षण

- देश में कुल पैदा की गयी बिजली का 27% कृषि क्षेत्र में इस्तेमाल किया जाता है। अतः कृषि क्षेत्र में बिजली की

खपत को कम करने के लिये एग्रीकल्चर डिमांड साइड मैनेजमेन्ट (Ag DSM) मॉडल प्रारम्भ किया गया है।

- लाइफ लांग लर्निंग कार्यक्रम की शुरुआत भारत सरकार द्वारा की गयी है। इसका उद्देश्य विशेषज्ञों को बुलाकर उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले ऊर्जा व्यय को रोकने के लिये रणनीति बनाना है।
- घरों में होने वाले ऊर्जा के व्यय को नियंत्रित करने के लिये सबसे पहले तो घरों के डिजाइन में संशोधन किया जा रहा है। इसके बाद पानी आदि गर्म करने के लिये सौर ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है।
- घरेलू कार्य सौर ऊर्जा को प्रोत्साहित करने के कई तरह की योजनाएँ विभिन्न राज्य चला रहे हैं।
- मोटर गाड़ियों में भी ऊर्जा दक्षता बढ़ाने के लिये कार्य किया जा रहा है।
- जैसा कि हम सभी जानते हैं कि 1990 के दशक से शुरू हुई उदारीकरण की प्रक्रिया ने विकास की गंगा को गोमुख से निकाला है। इस विकास में सभी ने आनन्दपूर्वक डुबकी लगायी। मगर ऐसा करते समय वे भूल गये कि भविष्य में इसकी कितनी भारी कीमत उन्हें चुकानी पड़ सकती है। यदि इस बात का उन्हें जरा भी अहसास होता तो फरियाद दौड़ती चार पहिया का बेतहाशा उपभोग करने से डरते और ऊर्जा की खपत इस कदर न बढ़ती।
- वाहनों के बाद उद्योगों की बात कर लेते हैं क्योंकि व्यवसायिक रूप से प्रयुक्त होने वाली कुल ऊर्जा में इनका काफी बड़ा हिस्सा है।
- एक अनुमान के अनुसार उद्योग क्षेत्र कुल व्यवसायिक ऊर्जा का 50% उपभोग करते हैं। इसमें से 70% ऊर्जा का उपयोग- सीमेंट, उर्वरक, एल्युमीनियम, कपड़ा, लोहा और इस्पात तथा पेपर उद्योग करते हैं। इस क्षेत्र में तकनीकी उन्नयन के द्वारा ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा को बचाया जा सकता है।
- आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जापान लौह और इस्पात उद्योग एक टन स्टील के उत्पादन अमेरिका के स्टील कम्पनियों से 20% कम ऊर्जा का उपभोग करता है।

इसका पेपर उद्योग तकरीबन 38% ऊर्जा का उपयोग वैकल्पिक स्रोतों से करती है।

- स्वच्छ ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिये विभिन्न तरह की प्रदर्शनी, सम्मेलन, मेला, सेमिनार आदि का आयोजन किया जा रहा है। इसके साथ ही प्राकृतिक गैस कसे उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि कम लागत और ईंधन से अधिक उष्मीय मान प्राप्त किया जा सकें। ऊर्जा दक्षता को बढ़ाने के लिये राष्ट्रीय मिशन का उल्लेख करना जरूरी है। इसकी शुरुआत 2008 में की गयी। इसका उद्देश्य है कि वर्ष 2015 से 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष ऊर्जा के उपभोग को कम करने में सहयोग प्रदान करें।

इन तमाम प्रयासों के बाद भी क्या हम ऊर्जा के अनावश्यक उपभोग को रोक सकते हैं? इस प्रश्न में जवाब में इतना जरूर कहा जा सकता है कि पूर्ण रूप से विफल तो नहीं हुये हैं लेकिन यह भी सही है जिस तरह की सफलता की आशा की गयी थी, वहाँ तक निश्चित रूप से नहीं पहुँच सका है। आखिर इसकी क्या वजह रही? ऊर्जा दक्षता के लाभ/हानि को लेकर आम जनता में कोई जागरूकता नहीं है। उन्हें ये बात समझ में नहीं आती है कि वे अकारण घर के विपुल उपकरण चलाकर न केवल अपना बल्कि अपने आने वाली पीढ़ी का भी नुकसान कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि जो भी नई तकनीक इजाद हो रही है वह देश के दूसरे कोने तक पहुँचने में इतना समय लगा देती है कि वह स्वयं ही नयी तकनीकी के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है। तीसरी वजह मूल्य है, जैसा कि हम सभी जानते हैं कि भारत में आज भी प्रति व्यक्ति आय 20 रुपये से कम है। चौथा कारण पूंजी है, इस क्षेत्र में तकनीकी के विकास के लिये वृहत पैमाने पर पूंजी की जरूरत है। जिसे सरकारी क्षेत्र अकेले पूरा करने में सक्षम नहीं है। इस सभी प्रतिगामी तत्वों को दूर करने और ऊर्जा दक्षता को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने के लिये सरकार ने कई पहल की है। सबसे पहले तो इसके विषय में लोगों को जागरूक करने के लिये विविध प्रकार के कार्यक्रम चलाये जा रहे, जैसे- CFL को सस्ते दामों पर उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है। दूसरा, इस क्षेत्र में निजी क्षेत्रों को आकर्षित करने के लिये विभिन्न देशों और कम्पनियों से समझौता हो रहा है।



पर्यावरणीय अवनयन (ENVIRONMENTAL DEGRADATION)



भूमिका

- किसी भी प्रदेश, देश या क्षेत्र के भौतिक पर्यावरण के एक या कई संघटकों में उत्पन्न गिरावट को पर्यावरण अवनयन या पर्यावरण अवक्रमण (Environment degradation) कहते हैं।
- संरचना अजैविक संघटकों (स्थल, जल, मृदा तथा वायु) जैविक संघटकों (पौधे, मानव सहित जन्तु तथा सूक्ष्म जीव) द्वारा होती है।
- इस प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र का भौतिक एवं जैविक प्रक्रमों द्वारा कार्यान्वयन तथा नियंत्रण होता है।
- ये भौतिक तथा जैविक प्रक्रम इस तरह कार्य करते हैं कि यदि भौतिक पर्यावरण के किसी क्षेत्र में किसी क्षेत्र में किसी संघटक या संघटकों में किसी खास समय में कोई परिवर्तन होता है तो उसकी अन्य परिवर्तनों द्वारा समुचित भरपाई हो जाती है।
- इस तरह की स्वतः नियंत्रित होने वाली क्रियाविधि को (होम्योस्टैटिक क्रियाविधि-Homeostatic mechanism) कहते हैं।
- इस क्रियाविधि के कारण प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र या पर्यावरण तंत्र में सदा संतुलन बना रहता है।
- प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में भौतिक प्रक्रम तथा प्रक्रियायें जीवों के लिए विभिन्न प्रकार के अनुकूल आवास क्षेत्रों का निर्माण करती हैं जबकि जैविक समुदाय खासकर मनुष्य भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन करते हैं।
- पृथ्वी पर जीवधारियों के उत्पत्ति काल से ही विभिन्न प्रकार के जीव भौतिक पर्यावरण के विभिन्न संघटकों में परिवर्तन एवं परिमार्जन करते आ रहे हैं।
- 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत से मनुष्य आधुनिक प्रौद्योगिकी से समृद्धि होकर सर्वाधिक शक्तिशाली पर्यावरणीय प्रक्रम के रूप में उभर कर सामने आया है।
- अब वह भौतिक पर्यावरण को बड़े पैमाने पर परिवर्तित करने में समर्थ हो गया है मानव पर्यावरण को उस सीमा तक परिवर्तित करने में समर्थ है जो न केवल जीवों के लिए घातक होगा वरन् उसका स्वयं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा।
- 20वीं शताब्दी में जनसंख्या में आशातीत वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ा है, परिणामस्वरूप निरन्तर बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए इन प्राकृतिक संसाधनों का लोलुपतापूर्ण धुँआधार विदोहन हो रहा है।
- आधुनिक प्रौद्योगिक में प्रगति तथा मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलापों में वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधन के विदोहन में और तेजी आयी है।
- इन सबका परिणाम यह हुआ है कि भौतिक पर्यावरण के कुछ संघटकों में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि उसकी क्षतिपूर्ति भौतिक पर्यावरण के अन्तः निर्मित होमियोस्टैटिक क्रियाविधि द्वारा सम्भव नहीं है।